

आद्यं भक्त



॥ श्रीहरिः ॥

## निवेदन

—३४—

इससे पहले भक्त-नारी, भक्त-वालक और भक्त-पञ्चरत्न नामक तीन पुष्प भक्त-चरित-मालामें पिरोये जा चुके हैं, यह चौथा है। इसमें सात कथाएँ हैं, सातों ही अत्यन्त उपादेय, शिक्षाप्रद और परम लाभकारी हैं। कथाएँ पुराणोंके आधारपर लिखी गयी हैं। इनमें कुछ कथाओंके संशोधित करके पुनः लिखनेमें मिन्नवर श्रीभगवानदासजी हालनाने सहायता दी है, इसलिये उन्हें साधुवाद ! आशा है पहलेकी तीन पुस्तकोंकी भाँति इससे भी प्रेमी पाठक-पाठिकाएँ लाभ उठावेंगे ।

हनुमानप्रसाद पोदार

—३५—

# विषय-सूची

—००००००००—

		पृष्ठ
१-राजा शिवि	...	...
२-राजा रन्तिदेव	...	...
३-राजा अम्बरीष	...	...
४-भीमपितामह	...	...
५-पाण्डव अर्जुन	...	...
६-विश्र सुदामा	...	...
७-चक्रिक भील	...	...
		१०३

# चित्र-सूची

—००००००—

		पृष्ठ
१-सुदामा और श्याम का प्रेम-मिलन (रंगीन)	...	...
२-राजा रन्तिदेव (सादा)	...	...
३-दुर्वासाजी अम्बरीष की शरण आये (रंगीन)	...	...
४-भीमपितामह (सादा)	...	...
५-भक्त अर्जुन और उनके सारथि भगवान् श्रीकृष्ण (रंगीन)	...	...
६-सुदामाका चरण-प्रक्षालन (सादा)	...	...
७-भगवान् की गोदमें भक्त चक्रिक (रंगीन)	...	...
		१०३

—००००००—





सुदामा और श्रीकृष्णका प्रेममिलन

॥ श्रीहरिः ॥

## अकाद्वृष्टि भक्ति

—००००००—

### राजा शिवि

—००००००—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।

प्राणिनां दुःखतसानां कामये दुःखनाशनम् ॥\*॥

(शिवि)



शीनर-पुत्र हरिभक्त महाराज शिवि बड़े ही दयालु  
और शरणागतवत्सल थे । पक्ष समय राजा एक  
महान् यज्ञ कर रहे थे । इतनेमें भयसे कोँपता हुआ  
एक कबूतर राजाके पास आया और उनकी गोदमें  
छिप गया । इतनेमें ही उसके पीछे उड़ता हुआ एक विशाल वाज  
चहाँ आया और वह मनुष्यकी-सी भाषामें उदारहृदय राजासे बोला—

वाज-हे राजन् ! पृथिवीके धर्मात्मा राजाओंमें आप सर्वश्रेष्ठ  
हैं, पर आज आप धर्मसे विरुद्ध कर्म करनेकी इच्छा कैसे कर रहे  
हैं ? आपने कृतन्त्रको धनसे, झूठको सत्यसे, निर्दयीको क्षमासे  
और असाधुको अपनी साधुतासे जीत लिया है । उपकार करने-  
वालेके साथ तो सभी उपकार करते हैं परन्तु आप बुराई करने-

\* न मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न अपुनर्भव-मोक्ष  
ही चाहता हूँ । मैं दुःखसे पीड़ित प्राणियोंके दुःखका नाश चाहता हूँ ।

वालेका भी उपकार करते हैं। जो आपका अहित करता है आप उसका भी हित करना चाहते हैं। पापियोंपर भी आप दया करते हैं। और तो क्या, जो आपमें दोष दृढ़ते हैं उनमें भी आप गुण ही दृढ़ते हैं। ऐसे होकर भी आज आप यह क्षा कर रहे हैं? मैं भूखसे व्याकुल हूँ। मुझे यह कवृतरक्षपी भोजन मिला है, आप इस कवृतरके लिये अपना धर्म क्यों तोड़ रहे हैं?

कवृतर—महाराज! मैं ब्राजसे उरकर प्राणरक्षाके लिये आपके शरण आया हूँ। आप मुझे ब्राजको कर्मी गत दीजिये!

राजा—(बाजसे) तुमसे उरकर यह कवृतर अपनी प्राणरक्षाके लिये मेरे समीप आया है। इस तरहसे शरण आये हुए कवृतरका त्याग मैं कैसे कर दूँ? जो मनुष्य शरणागतको रक्षा नहीं करते या लोभ, हेप अथवा भयसे उसे त्याग देते हैं उनकी सज्जन लोग निन्दा करते हैं और उनको ब्रजहत्याके समान पाप स्वन्ता है। जिस तरह हमलोगोंको अपने प्राण प्यारे हैं, उसी तरह सबको प्यारे हैं। अच्छे लोगोंको चाहिये कि वे मृत्युभयसे व्याकुल जीवोंकी रक्षा करें। 'मैं मरूँगा' यह दुःख प्रत्येक पुरुषको होता है। इसी अनुमानसे दूसरेकी भी रक्षा करनी चाहिये। जिस प्रकार तुमको अपना जीवन प्यारा है उसी प्रकार दूसरोंको भी अपना जीवन प्रिय है। जिस तरह तुम भूखसे मरना नहीं चाहकर अपना जीवन बचाना चाहते हो, उसी तरह तुम्हें दूसरोंके जीवनकी भी रक्षा करनी चाहिये। हे बाज! मैं यह भयभीत कवृतर तुम्हें नहीं दे

सकता, और किसी उपायसे तुम्हारा काम बन सकता हो तो मुझे शीघ्र बतलाओ, मैं करनेको तैयार हूँ ।

वाज—महाराज ! भोजनसे हीं जीव उत्पन्न होते, बढ़ते और जाते हैं, विना भोजन कोई नहीं रह सकता । मैं भूखके मारे मर जाऊँगा तो मेरे बाल-बच्चे भी मर जायेंगे । एक कवृतरके बचानेमें बहुत-से जीवोंकी जानें जायेंगी । हे परन्तप ! उस धर्मको धर्म नहीं कहना चाहिये जो दूसरे धर्ममें वाधा पहुँचाता है । श्रेष्ठ पुरुष उसीको धर्म ब्रतलाते हैं जिससे किसी भी धर्ममें वाधा नहीं पहुँचती । अतएव दो धर्मोंका विरोध होनेपर बुद्धिरूपी तराजूसे उन्हें तौलना चाहिये और जो अधिक महत्वका और भारी मालूम हो, उसे ही धर्म मानना चाहिये ।

राजा—हे वाज ! भयमें पड़े हुए जीवोंकी रक्षा करनेसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है । जो मनुष्य दयासे द्रवित होकर जीवोंको अभयदान देता है वह इस देहके छूटनेपर सम्पूर्ण भयसे छूट जाता है । लोकमें बड़ाई या स्वर्गके लिये धन, वस्त्र और गौ देनेवाले बहुत हैं परन्तु सब जीवोंकी भलाई करनेवाले पुरुष दुर्लभ हैं । बड़े-बड़े यज्ञोंका फल समयपर क्षय हो जाता है, पर भयभीत प्राणीको दिया हुआ अभयदान कभी क्षय नहीं होता—मैं राज्य या अपना दुर्लभ शरीरका त्याग कर सकता हूँ, पर इस दीन, भयसे त्रस्त कवृतरको नहीं छोड़ सकता ।

यन्ममास्ति शुभं किञ्चित्तेन जन्मनि जन्मनि ।

भवेयमहमात्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशकः ॥

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।

प्राणिनां दुःखतस्तानां कामये दुःखनाशनम् ॥

‘अपने पहलेके जन्मोंमें मैंने जो कुछ भी पुण्य किया हैं उसका फल मैं केवल यही चाहता हूँ कि दुःख और द्वेषमें पड़े हुए प्राणियोंका मैं द्वेष नाश कर सकूँ । मैं न राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न मोक्ष चाहता हूँ, मैं चाहता हूँ केवल दुःखमें तपते हुए प्राणियोंके दुःखका नाश !’

‘हे वाज ! तुम्हारा यह काम केवल आहारके लिये है । तुम आहार चाहते हो, मैं तुम्हारे दुःखका भी नाश चाहता हूँ, अतएव तुम मुझसे कवूतरके बदलेमें चाहे जितना और आहार माँग लो ।

वाज—हमलोगोंके लिये शालानुसार कवूतर ही आहार है, अतएव आप इसीको छोड़ दीजिये ।

राजा—हे वाज ! मैं भी शालसे विपरीत नहीं कहता । शासके अनुसार सत्य और दया सबसे बड़े धर्म हैं । उठते, बैठते, चलते, सोते या जागते हुए जो काम जीवोंके हितके लिये नहीं होता वह पशुचेष्टाके समान है । जो मनुष्य स्थावर और ज़म्म जीवोंकी आत्मवत् रक्षा करते हैं वे ही परमगतिको प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य समर्थ होकर भी मारे जाते हुए जीवकी परवा नहीं करता, वह घोर नरकमें गिरता है । मैं तुम्हें अपना समस्त राज्य दे सकता

हूँ या इस कवूतरके सिवा तुम जो कुछ भी चाहोगे सो देनेको  
तैयार हूँ, पर कवूतरको नहीं दे सकता ।

बाज—हे राजन् ! यदि इस कवूतरपर आपका इतना ही प्रेम है  
तो इस कवूतरके ठीक वरावरका तौलकर आप अपना मांस सुझे  
दे दीजिये, मैं अधिक नहीं चाहता ।

राजा—बाज ! तुमने बड़ी कृपा की । तुम जितना चाहो  
उतना मांस मैं देनेको तैयार हूँ । इस क्षणंभंगुर, अनित्य शरीरको  
देकर भी जो नित्य धर्मका आचरण नहीं करता वह मूर्ख शोचनीय है ।

यदि प्राणयुपकाराय ! देहोऽयं नोपयुज्यते ।

ततः किमुपकारोऽस्य प्रत्यहं क्रियते वृथा ॥

‘यह शरीर यदि प्राणियोंके उपकारके लिये उपयोगमें न आवे  
तो प्रतिदिन इसका पालन-पोपण करना व्यर्थ है ।’ हे बाज ! मैं  
तुम्हारे कथनानुसार ही करता हूँ ।

यह कहकर राजाने एक तराजू मँगवाया और उसके एक  
पलड़ेमें कवूतरको बैठाकर दूसरेमें वे अपना मांस काट-काटकर रखने  
लगे और उसे कवूतरके साथ तौलने लगे । अपने सुखभोगकी इच्छाको  
त्यागकर सबके सुखमें सुखी होनेवाले सज्जन ही दूसरोंके दुःखमें  
सदा दुखी हुआ करते हैं । कवूतरकी रक्षा हो और बाजके भी  
प्राण बचें, दोनोंका ही दुःख निवारण हो, इसीलिये आज  
महाराज शिवि अपने शरीरका मांस अपने हाथों प्रसन्नतासे काट-

काट दे रहे हैं। भगवान् छिपे-छिपे अपने भक्तके इस त्यागको देख-देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। धन्य त्यागका आदर्श !

तराजूमें कवूतरका वजन मांससे बढ़ता गया, राजाने शरीर-भरका मांस काटकर रख दिया परन्तु कवूतरका पलड़ा नीचा ही रहा। तब राजा खयं तराजूपर चढ़ गये। ठीक ही तो है—

परदुःखातुरा नित्यं सर्वभूतहिते रताः ।

नापेक्षन्ते महात्मानः स्वसुखानि महान्त्यपि ॥

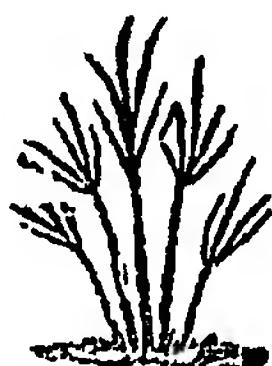
‘दूसरेके दुःखसे आतुर, सदा समर्त प्राणियोंके हितमें रत महात्मालोग अपने महान् सुखकी तनिक भी परवा नहीं करते !’ राजा शिविके तराजूमें चढ़ते ही आकाशमें वाजे वजने लगे और नभसे पुष्प-वृष्टि होने लगी।

राजा मनमें सोच रहे थे कि यह मनुष्यकी-सी वाणी बोलनेवाले कवूतर और वाज कौन हैं ? तथा आकाशमें वाजे वजनेका क्या कारण है, इतनेहीमें वह वाज और कवूतर अन्तर्धान हो गये और उनके बदलेमें दो दिव्य देवता प्रकट हो गये। दोनों देवता इन्द्र और अग्नि थे। इन्द्रने कहा—

‘राजन् । तुम्हारा कल्याण हो ॥ मैं इन्द्र हूँ और जो कवूतर बना था वह यह अग्नि है। हमलोग तुम्हारी परीक्षा करने आये थे। तुमने जैसा दुष्कर कार्य किया है ऐसा आजतक किसीने नहीं किया। यह सारा संसार मोहमय कर्मपाशमें बँधा हुआ है, परन्तु तुम जगत्के

दुःखोंसे छूटनेके लिये करुणासे बँध गये हो । तुमने बड़ोंसे ईर्पा नहीं की, छोटोंका कभी अपमान नहीं किया और वरावर बालोंके साथ कभी स्पर्षी नहीं की, इससे तुम संसारमें सबसे श्रेष्ठ हो । विधाताने आकाशमें जलसे भरे बादलोंको और फलसे भरे वृक्षोंको परोपकारके लिये ही रचा है । जो मनुष्य अपने प्राणोंको त्यागकर भी दूसरेके प्राणोंकी रक्षा करता है वह उस परमधामको पाता है जहाँसे फिर लौटना नहीं पड़ता । अपना पेट भरनेके लिये तो पशु भी जीते हैं, किन्तु प्रशंसाके योग्य जीवन तो उन लोगोंका है जो दूसरोंके लिये जीते हैं । सत्य है, चन्दनके वृक्ष अपने ही शरीरको शीतल करनेके लिये नहीं उत्पन्न हुआ करते । संसारमें तुम्हारे सदृश अपने सुखकी इच्छासे रहित, एकमात्र परोपकारकी बुद्धिवाले साधु केवल जगत्‌के हितके लिये ही पृथिवीपर जन्म लेते हैं । तुम दिव्य-रूप धारण करके चिरकालतक पृथिवीका पालनकर अन्तमें भगवान्‌के ब्रह्मलोकमें जाओगे ।'

इतना कहकर इन्द्र और अग्नि खर्गको चले गये । राजा शिवि यज्ञ पूर्ण करनेके बाद बहुत दिनोंतक पृथिवीका राज्य करके अन्तमें दुर्लभ परमपदको प्राप्त हुए ।



# राजा रन्तिदेव

—००८०८०—

न कामयेऽहं गतिसीश्वरात्परा-  
मष्टुद्धियुक्तामपुनर्भवं वा ।

आर्ति प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-  
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥

( रन्तिदेव )



रत्वर्प नररहोंकी खानि है । किसी भी विषयमें लीजिये, इस देशके इतिहासमें उच्च-से-उच्च उदाहरण मिल सकते हैं । संकृति नामक राजा के दो पुत्र थे, एकका नाम था गुरु और दूसरेका रन्तिदेव । रन्तिदेव बड़े ही प्रतार्पा राजा हुए । इनकी न्यायशीलता, दयालुता, धर्मपरायणता और त्यागकी ख्याति तीनों लोकोंमें फैल गयी । रन्तिदेवने गरीबोंको दुखी देखकर अपना सर्वस्तु दान कर डाला, इसके बाद वे किसी तरह कठिनतासे अपना निर्वाह करने लगे । पर उन्हें जो कुछ मिलता था उसे खर्यं भूखे रहनेपर भी वे गरीबोंको वाँट दिया करते थे । इस प्रकार राजा सर्वथा निर्धन होकर सपरिवार अत्यन्त कष्ट सहने लगे ।

एक समय पूरे अड़तालीस दिनतक राजा को भोजनकी कौन कहे,

माला अनितदेव





जल भी पीनेको नहीं मिला । भूख-प्याससे पीड़ित बलहीन राजाका शरीर काँपने लगा । अन्तमें उनचासवें दिन प्रातःकाल राजाको धी, खीर, हल्वा और जल मिला । अड़तालीस दिनके लगातार अनशनसे राजा परिवारसहित बड़े ही दुर्वल हो गये थे । सबके शरीर काँप रहे थे । रोटीकी कीमत भूखा मनुष्य ही जानता है ! जिसके सामने मेवे-मिष्ठानोंके ढेर आगे-से-आगे लगे रहते हैं उसे गरीबोंके भूखे पेटकी ज्वालाका क्या पता !!

रन्तिदेव भोजन करना ही चाहते थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गया । करोड़ रुपयोंमेंसे नामके लिये लाख रुपये दान करना बड़ा सहज है परन्तु भूखे पेटका अन्न दान करना बड़ा कठिन कार्य है । पर सर्वत्र हरिको व्याप्त देखनेवाले भक्त रन्ति-देवने वह अन्न आदरसे श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणरूप अतिथिनारायणको बाँट दिया । ब्राह्मण भोजन करके तृप्त होकर चला गया ।

उसके बाद वचा हुआ अन्न राजा परिवारको बाँटकर खाना ही चाहते थे कि एक शृङ् अतिथिने पदार्पण किया । राजाने भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हुए वचा हुआ अन्न उस दरिद्र-नारायणकी भैंट कर दिया । इतनेमें ही कई कुत्तोंको साथ लिये एक और मनुष्य अतिथि होकर वहाँ आया और कहने लगा—‘राजन् ! मेरे ये कुत्ते और मैं भूखा हूँ, भोजन दीजिये ।’

हरिभक्त राजाने उसका भी सत्कार किया और आदरपूर्वक

बचा हुआ सारा अन्न कुतोंसहित उस अतियिमगवान्‌के समर्पण-  
कर उसे प्रणाम किया !

अब, एक मनुष्यकी प्यास बुझ सके—केवल इतना-सा जल  
बच रहा था । राजा उसको पीना ही चाहते थे कि अकस्मात्  
एक चाण्डालने आकर दीन-खरसे कहा—‘महाराज ! मैं बहुत ही  
थका हुआ हूँ, मुझ अपवित्र नीचको पीनेके लिये घोड़ा-सा जल  
दीजिये ।’

उस चाण्डालके दीन-बचन सुनकर और उसे थका हुआ  
जानकर रन्तिदेवको बड़ी दया आयी और उन्होंने ये अमृतमय  
बचन कहे—

‘मैं परमात्मासे अणिमा आदि आठ सिद्धियोंसे युक्त उत्तम  
गति या मुक्ति नहीं चाहता, मैं केवल यही चाहता हूँ कि मैं ही  
सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर उनका दुःख भोग करूँ  
जिससे उन लोगोंका दुःख दूर हो जाय ।’

‘इस मनुष्यके प्राण जल बिना निकल रहे हैं, यह प्राण-  
रक्षाके लिये मुझसे दीन होकर जल माँग रहा है, इसको यह  
जल देनेसे मेरी भूख, प्यास, थकावट, चक्कर, दीनता, क्लान्ति,  
शोक, विषाद और मोह आदि सब मिट जायेंगे ।’

इतना कहकर सामाविक दयालु राजा रन्तिदेवने खर्यं  
प्यासके मारे मृतप्राय रहनेपर भी उस चाण्डालको वह जल आदर  
और प्रसन्नतापूर्वक दे दिया । ये हैं भक्तके लक्षण ।

फलकी कामना करनेवालोंको फल देनेवाले त्रिभुवननाथ  
ब्रह्मा, विष्णु और महेश ही महाराज रन्तिदेवकी परीक्षा लेनेके  
लिये मायाके द्वारा क्रमशः ब्राह्मणादि रूप धरकर आये थे । अब  
राजाका धैर्य और उसका भक्ति देखकर वे परम प्रसन्न हो गये और  
उन्होंने अपना-अपना यथार्थ रूप धारणकर राजाको दर्शन दिया ।  
राजाने तीनों देवोंका एक ही साथ प्रत्यक्ष दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया  
और उनके कहनेपर भी कोई वर नहीं माँगा । क्योंकि राजाने  
आसक्ति और कामना त्यागकर अपना मन केवल भगवान् वासुदेव-  
में लगा रखा था । यों परमात्माके अनन्य भक्त रन्तिदेवने अपना  
चित्त पूर्णरूपसे केवल ईश्वरमें लगा दिया और परमात्माके साथ  
तन्मय हो जानेके कारण त्रिगुणमयी माया उनके निकट स्वप्नके  
समान लीन हो गयी । रन्तिदेवके परिवारके अन्य सब लोग भी उनके  
संगके प्रभावसे नारायणपरायण होकर योगियोंकी परम गतिको  
ग्रास हुए ।



# राजा अम्बरीप

४२

[ १ ]



सी एक दरिद्र मनुष्यका भोग-पदार्थोंके अभावमें वैराग्यका आश्रय लेकर भगवान्‌की भक्तिमें लग जाना बहुत कुछ सम्भव है, परन्तु जिसके साधारण-से संकेतसे देव-दुर्लभ विठास-सामग्रियोंका समृह अनायास ही एकत्रित हो सकता है, ससागरा पृथिवीके सातों

द्वीपोंपर जिसकी प्रभुताका निष्कण्ठक विस्तार है और जिसके धन-ऐश्वर्यादिकी कोई सीमा नहीं है, ऐसे एक परम वैभवशाली सप्त्राट्का अपने समस्त भोग-पदार्थोंको तुच्छ और हैय समझकर वैराग्ययुक्त हो आनन्दमय प्रभुकी अनन्य भक्तिमें लग जाना बड़ा ही कठिन कार्य है। साधारण-सा धन और अधिकार मनुष्यको अन्धा बना देता है। कामिनी, काश्चन और प्रभुत्वमें बड़ी मादकता होती है, बड़े-बड़े बुद्धिमान् पुरुष इनके मदमें मत्त होकर अपना सर्वनाश कर बैठते हैं।

श्री-मद् बक्त न कीन्ह केहि, प्रभुता वधिर न काहि ।

मृगनयनीके नयन-सर, को अस लागु न जाहि ॥

( गोसाई शुलसीदासजी )



दुर्घासाजी अम्बरीपकी शरण आये



परन्तु जो भाग्यवान् जन उस अशरणशरण दीनबन्धुके दरबारमें अपना नाम दीनोंकी श्रेणीमें लिखवाकर शरणागतिकी सनद प्राप्त कर लेते हैं, प्रभुकी अनिर्वचनीय अनुकम्पासे उनपर किसी भी मादक पदार्थकी मादकताका कोई असर नहीं होता। वे तो 'जलमें कमल' की तरह लोकदृष्टिसे जगत्में रहते हुए भी सदैव सत्रसे निर्लेप रहते हैं। भक्तवर अम्बरीष भी एक ऐसे ही परम भाग्यवान् भक्त थे। अम्बरीषजीका चरित्र बड़ा ही पवित्र है। आप वैवर्तमनुके पौत्र महाराज नाभागके सुपुत्र थे और एक विशाल साम्राज्यके अधीश्वर थे।

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

अम्बरीपो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।

अव्ययां च श्रियं लक्ष्यत्वा विभवं चातुलं भुवि ॥

( ६ । ४ । १५ )

सप्तद्वीपमयी पृथिवीका राज्य, कभी शेष न होनेवाली सम्पदा और अतुल ऐश्वर्य उनको प्राप्त था, परन्तु वे इस वातको भलीभाँति जानते थे कि यह समस्त ऐश्वर्य खग्गमें देखे हुए पदार्थोंके सदृश असर है, उनको यह भी विदित था कि धन-सम्पत्तिकी प्राप्तिसे मनुष्यको मोह होता है और उसके नाशसे बुद्धि मारी जाती है। वास्तवमें यह सत्य है कि भगवान् वासुदेवके परम भक्त सन्तोंको यह सारा विश्व 'लोप्तवत्स्मृतम्' मिट्टीके ढेलेके समान तुच्छ प्रतीत होने लगता है। इसी दृढ़ प्रतीतिके कारण भक्तवर अम्बरीषने

अपना सारा जीवन परमात्माके पावन चरणकमलोंमें समर्पण कर दिया था, दिन-रात उनकी समस्त इन्द्रियाँ मनसहित भगवत्-सेवामें लगी रहती थीं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-  
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।  
करौ हरैर्मन्दिरमार्जनादिषु  
श्रुतिं चकाराच्युतस्तकथोदये ॥  
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दूशौ  
तदभृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गम् ।  
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे  
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥  
पादौ हरे: क्षेत्रपदानुसर्पणे  
शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।  
कामं च दास्ये न तु कामकास्यया  
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥  
एवं सदा कर्मकलापमात्मनः  
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।  
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां  
तन्निष्टविप्राभिहितः शशास ह ॥

( श्रीमद्भा० ९ । ४ । १८-२१ )

‘(राजा अम्बरीषने) अपने मनको भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलों-में, वाणीको उनके गुणानुवाद गानेमें, हाथोंको श्रीहरि-मन्दिरके झाड़ने-बुहारनेमें और कानोंको भगवान् अच्युतकी पवित्र कथाओंके सुननेमें लगाया था।’

‘नेत्रोंको भगवान्‌की मूर्ति के दर्शन में, अङ्गोंको भगवत्सेवकों के अङ्गों से स्पर्श करने में, नासिकाको श्रीहरि के चरणकमलों पर चढ़ी हुई श्रीतुलसीजी की सुगन्ध को सूँघने में और रसनाको श्रीहरि के प्रसाद का रस लेने में लगाया था ।’

‘पैरोंको श्रीहरि के पवित्र स्थानों में जाने में और मस्तक को श्री-हृषी केश के चरणों की वन्दना में लगाया था । विषयीजनों की भाँति वे विषय-भोगों में लिप्त नहीं थे । वे जो कुछ भी भोग करते सो सब श्रीहरि का प्रसाद समझकर करते । भगवान्‌के भक्तों में प्रीति हो, इसलिये वे सब प्रकार के भोगों को ( पहले हरि भक्तों की सेवा में अर्पण करके पीछे खाय ) ग्रहण करते थे ।’

‘अपने समस्त कर्म उस यज्ञपुरुष परमात्मा अधोक्षज श्रीकृष्ण में अर्पण करते हुए और सबका आत्मा भगवान् ही है, ऐसी भावना करते हुए ( राजा अम्बरीप ) भगवत्-परायण ब्राह्मणों की बतलायी हुई रीति के अनुसार न्यायपूर्वक राज्य का पालन करते थे ।’

कैसा आदर्श जीवन है ! जो इस प्रकार अपनी सारी क्रियाओं को परमात्मा के प्रति अर्पण कर देता है उसीके लिये तो परमात्मा को अवतार धारण करके भाँति-भाँति की लीलाएँ करनी पड़ती हैं !

राजा अम्बरीपने निष्कामभाव से अनेक वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया, विविध वस्तुओं के प्रचुर दान से सर्वव्यापी परमात्मा की सेवा की और वे सब प्रकार की स्पृहासे मुक्त होकर

दिन-रात भगवत्प्रेममें निःमय रहने लगे। सर्गका खुख तो उन्हें अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होने लगा। जो लोग अपने शुद्ध हृदयके सुरम्य सिंहासनपर भगवान् मुकुन्दको विराजित देखते हैं उनको ऐसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है कि जिसके सामने अन्य समस्त आनन्द अति तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं।

जो भाग्यशाली पुरुष हरिप्रेमामृतके मधुरास्तादको चखकर सन्तुष्ट और अमर हो जाता है, उसकी दृष्टि विषयपूर्ण मोदककी तरफ कदापि नहीं जाती। राजा अम्बरीप भी भगवत्प्रेमसुधाको पानकर घृह, लौ, पुत्र, स्वजन, गज, रथ, धोड़, रत, वस, आभूषण, शत्राङ्ग, कभी शेष न होनेवाले धनके भण्डार और सर्गादिको तुच्छ तथा मिथ्या समझकर केवल भगवद्भक्तिमें लग गये।

राजाकी तो वात ही क्या है, उनके अधीन रहनेवाले समस्त राजकर्मचारी और नगरनिवासियोंने भी देवताओंके प्रिय सर्गकी इच्छाको छोड़कर केवल श्रीहरिके पवित्र चरित्रोंको सुनने-सुनानेमें अपना-अपना मन लगा दिया। इस प्रकार जब राजा अम्बरीपने अपनी प्रजासमेत केवल एक भगवान्‌का आश्रय ग्रहण कर लिया तब भगवान्‌को भी उनकी रक्षाका भार ग्रहण करना पड़ा। यही नियम है। जब मनुष्य अपनी सारी चिन्ताओं-का भार छस चिन्ताहरण चतुरचिन्तामणिके चारु चरणकमलोंमें डालकर निश्चिन्त हो जाता है तब भगवान् उसे कहते हैं कि,

‘मा शुचः’ चिन्ता न करो, तुम्हारा सारा भार मैंने ले लिया ।  
बड़ी साधनासे ऐसी अवस्था होती है ।

भगवान्‌ने भक्तकी सब प्रकारकी रक्षाके लिये दुष्टदर्पदलन-  
कारी उदर्शनको नियुक्त कर दिया । उदर्शन प्रभुकी अनुभवि-  
पाकर राजद्वारपर पहरा देने लगा ।

[ २ ]

महाराज अम्बरीपकी पतिव्रता रानी भी पतिकी भाँति  
भगवान्‌की पूर्ण अनुरागिणी थी । एक समय राजाने रानीसमेत  
श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये एक वर्षकी एकादशियोंके ब्रतका नियम  
किया । वर्ष समाप्त होनेपर विधिवत् भगवान्‌की पूजा की गयी ।  
बहुत बड़ी संख्यामें वल्लभूषणोंसे सजी हुई गौएँ दान दी गयीं  
और आदरसहित ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया । यह सब कर  
चुकनेपर राजा पारण करना ही चाहते थे कि ऋषि दुर्वासा अपने  
शिष्योंसहित पधारे । अतिथि-सत्कारका महत्व जाननेवाले राजाने  
सब प्रकारसे दुर्वासाजीका सत्कार कर उनसे भोजन करनेके लिये  
प्रार्थना की । ऋषिने भोजन करना खीकार किया और वे मध्याह्नका  
नित्यकर्म करनेके लिये यमुनाजीके तटपर चले गये । द्वादशी  
केवल एक ही बड़ी बाकी थी, द्वादशीमें पारण न होनेसे ब्रत  
भंग होता है । राजा धर्मसङ्कटमें पड़े और ब्राह्मणोंसे व्यवस्था  
लेकर हरिभक्त राजाने श्रीहरिका चरणोदक लैकर पारण कर लिया  
और भोजन करानेके लिये दुर्वासाजीकी बाट देखने लगे । दुर्वासाजी

अपनी नित्यक्रियाओंसे निष्टुत होकर राजमन्दिरमें लौटे और अपने तपोबलसे राजाके पारण कर लेनेको बातको जानकर अत्यन्त क्रोधसे त्यौरी चढ़ाकर अपराधीको तरह हाथ जोड़े सामने खड़े हुए राजासे कहने लगे कि 'अहो ! इस धनमदसे अन्ध अधन राजाको धृष्टता और धर्मके निरादरको तो देखो ! अब यह विष्णु-का भज्ञ नहीं है । यह तो अपनेको ही ईश्वर मानता है । मुझ अतिथिको निमन्त्रण देकर इसने मुझे भोजन कराये बिना ही खयं भोजन कर लिया । इसे अभी इसका फल चखाता हूँ ।' ये कहकर दुर्वासार्जीने मस्तकसे जटा उखाड़कर जोरसे उसे पृथिवीपर पटकी, जिससे तत्काल कालाग्निके समान कृत्या नामक एक भयानक राक्षसी प्रकट हो गयी और वह अपने चरणोंको चोटसे पृथिवीको कँपाती हुई तल्बार हाथमें लिये राजाको ओर झपटी । परन्तु राजा निर्भय मनसे ज्यो-के-त्यो खड़े रहे, वे न पीछे हटे और न उन्हें किसी प्रकारका भय हुआ । जो समत्त संसारमें परमात्माको व्यापक समझता है वह किससे ढेरे और कैसे ढेरे ? वह तो भयानक-से-भयानक रूपमें भी उसी मनमोहनकी माधुरीका दर्शन-कर अपनी ग्राणपुप्पाङ्गलिसे निरन्तर उसकी पूजा करनेको प्रत्युत रहता है । वह कहता है—

तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जय

तव फिर मैं किसलिये ड़हूँ ?

मरण-साज सज यदि आओ तो

चरण पकड़ सानन्द मरूँ ॥

राजा अम्बरीष तो इसी धुनमें मस्त थे । परन्तु भगवान्‌ने जिसको पहलेसे ही अपने सेवककी रक्षाके लिये नियुक्त कर रखा था, उस सुदर्शनचक्रने कृत्याको उसी क्षण ऐसे भस्म कर दिया जैसे प्रचण्ड दावानल कुपित सर्पको भस्म कर डालता है । सुदर्शन इसीसे शान्त नहीं हुआ, वह उन भक्तदोही ऋषि दुर्वासाजीकी खबर लेनेके लिये उनके पीछे चला । चौदेजी आये थे छब्बेजी होने, हो वैठे दुर्वेजी । लेनेके देने पड़े । दुर्वासा बड़े घबड़ाये और प्राण लेकर भागे । चक्र पीछे-पीछे चला । दुर्वासा दसों दिशाओंमें और चौदहों भुवनोंमें भटके । पाताल, पृथिवी, समुद्र और आकाशमें गये; लोक-लोकपाल, सुर-सुरेन्द्र और ब्रह्मा-शिव सबके समीप गये परन्तु कहीं भी उन्हें ठहरनेको ठौर नहीं मिली । किसीने भी उन्हें आश्रय और अभयदान नहीं दिया । वे दौड़ते-दौड़ते हैरान हो गये । मुनिको अत्यन्त दुखी जानकर भगवान् श्रीशिवजीने उन्हें वैकुण्ठमें श्रीविष्णुभगवान्‌के पास जानेका परामर्श दिया । वेचारे वैकुण्ठमें गये और भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंमें पड़कर गिड़-गिड़ते हुए बोले—‘हे प्रभो ! मैंने आपके प्रभावको न जानकर आपके भक्तका अपमान किया है । मुझे इस अपराधसे छुड़ाइये । आपके नामकीर्तन मात्रसे ही नरकके जीव भी नरकके कष्टोंसे छूट जाते हैं । अतएव मेरा अपराध क्षमा कीजिये ।’

भगवान् भृगुकी लात सह सकते हैं, परन्तु भक्तका तिरस्कार नहीं सह सकते । दुर्वासाजीको भगवान्‌की ओरसे जो उत्तर मिला-

उससे सच्चै भक्तकी अतुलनीय महिमा संसारमें सदाके लिये स्थापित हो गयी । भगवान्‌ने कहा—

अहं भक्तपराधीनो हस्ततन्त्र इव छिज ।  
 साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥  
 नाहमात्मानमाशासे भद्रकैः साधुभिर्विना ।  
 श्रियं चात्यन्तिकों ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥

( श्रीमद्भा० ६ । ४ । ६३-६४ )

‘हे ब्रह्मन् ! मैं भक्तके अधीन हूँ, त्वतन्त्र नहीं हूँ, मुझे भक्तजन बड़े प्रिय हैं । मेरे हृदयपर उनका पूर्ण अधिकार है । जिन्होंने मुझको ही अपनी परम गति माना है उन अपने परम भक्त साधुओं-के सामने मैं अपनी आत्मा और सम्पूर्ण श्री ( या अपनी लक्ष्मी ) को भी कुछ नहीं समझता ।’ भगवान्‌ने फिर कहा—

‘जो भक्त ( मेरे लिये ) लौ, पुत्र, घर, परिवार, धन, प्राण, इहलोक और परलोक सबको त्यागकर केवल मेरा ही आश्रय लेते हैं उन्हें मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? जैसे पतिनता लौ अपने शुद्ध प्रेमसे श्रेष्ठ पतिको वशमें कर लेती है उसी प्रकार मुझमें चित्त लगानेवाले सर्वत्र समदर्शीं साधुजन भी अपनी शुद्ध भक्तिसे मुझे अपने वशमें कर लेते हैं । काल पाकर नष्ट होनेवाले स्वर्गादि लोकोंकी तो गिनती ही क्या है, मेरी सेवा करनेपर उन्हें जो चार प्रकारकों ( सालोक्य, सामीप्य, सात्त्वप्य और सायुज्य )

मुक्ति मिलती है, उनको भी वे ग्रहण नहीं करते ! मेरे प्रेमके सामने वे सबको तुच्छ समझते हैं। इसलिये हे ब्रह्मन्—

साधयो हृदयं मह्यं साधुनां हृदयं त्वहम् ।

मदन्यन्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

( श्रीमद्भा० ६ । ४ । ६८ )

‘साधु मेरा हृदय है और मैं उन साधुओंका हृदय हूँ। वे मेरे सिवा और किसीको नहीं जानते तो मैं भी उनके सिवा और किसीको नहीं जानता ।’

इस प्रकार भक्तोंका और अपना नाता बतलाकर अन्तमें भयभीत हुए दुर्वासाजीसे अपनी खाभाविकी दयाके कारण भगवान्‌ने कहा—

ब्रह्मस्तद्बृच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ।

क्षमापय भहाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥

( श्रीमद्भा० ६ । ४ । ७१ )

‘हे ब्रह्मन् ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम उसी महाभाग नाभागपुत्र राजा अम्बरीपके समीप जाओ और उससे क्षमा माँगो, तभी तुमको शान्ति मिलेगी ।’ भगवान्‌की आज्ञा पाकर दुर्वासाजी लौट चले ।

[ ३ ]

इधर साधुहृदय क्षमामूर्ति अम्बरीषकी विचित्र अवस्था थी । जबसे दुर्वासाजीके पीछे चक्र चला था तभीसे राजा अम्बरीप

ऋषिके सन्तापसे सन्तास हो रहे हैं। साधुका हृदय मक्खनसे भी बढ़कर कोमल होता है। मक्खन खयं ताप पानेपर पिघलता है परन्तु साधुका हृदय तो दूसरेके तापसे द्रवित हुआ जाता है। निज परिताप द्रवै नवनीता। परदुख द्रवहिं सुसन्त पुनीता ॥

अम्बरीपजीने मनमें सोचा, ब्राह्मण भूखे गये हैं और मेरे ही कारण उन्हें मृत्युभयसे त्रस्त होकर इतना दौड़ना पड़ रहा है, इस अवस्थामें मुझे भोजन करनेका क्या अधिकार है। यों विचारकर राजाने उसी क्षणसे अन्न त्याग दिया और वे केवल जल पीकर रहने लगे। दुर्वासाजीके लौटकर आनेमें पूरा एक वर्ष बीत गया परन्तु अम्बरीपजीका ब्रत नहीं टला। दुर्वासाके दर्शनकी इच्छासे राजा तबतक केवल जलपर ही रहे।

दुर्वासाजीने आते ही राजाके चरण पकड़ लिये। राजाको बड़ा सङ्कोच हुआ। ब्राह्मणको सङ्कटमें पड़े जानकर राजाका सन्ताप और भी बढ़ गया। उन्होंने बड़ी विनयके साथ अर्थयुक्त वाणीसे सुदर्शनकी लुतिकर उसे शान्त किया। दुर्वासाजी भयानक मृत्युभयसे मुक्त हुए और उनके चेहरेपर हर्ष और कृतज्ञताके चिह्न स्पष्टरूपसे प्रकट हो गये। दुर्वासाजी आशीर्वाद देते हुए बोले—

‘अहो ! आज मैंने भगवान्‌के दासोंका महत्व देखा। मैंने तुम्हारा इतना अपराध किया, तो भी तुमने मेरे कल्याणकी ही

चेष्टा की । जिन लोगोंने भक्तवत्सल भगवान्‌को अपने वशमें कर लिया है उनके लिये कोई भी कार्य दुष्कर नहीं तथा कोई भी त्याग दुस्त्यज नहीं है । जिसके नामश्रवण मात्रसे मनुष्य पापोंसे छूट जाता है उस तीर्थपाद श्रीहरिके दासके लिये कौन-सा कार्य करना शेष रहा है ?

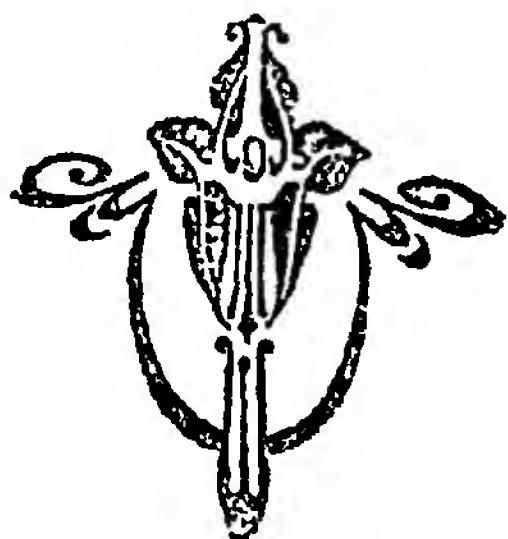
‘हे राजन् । तुम बड़े दयालु हो, तुमने मेरे प्रति बड़ी दया की है, मेरे अपराधकी ओर कुछ भी न देखकर तुमने मेरे ग्राण बचाये हैं !’ ऋषिके इन वाक्योंसे अम्बरीपके मनमें कोई अभिमान नहीं हुआ । जगत्‌में अपनी जरा-सी झूठी बड़ाई भी सुनकर लोग फूल जाते हैं परन्तु अम्बरीपने सच्ची बातें सुनकर भी यही सोचा कि यह सब भगवत्कृपाका ही प्रभाव है ।

विज्ञ पाठक और पाठिकाओ । ध्यान दीजिये इस चरित्रपर, यह हैं सच्चे भक्तके सुन्दर लक्षण । अपकार करनेवालेका भी उपकार करना, दुःख देनेवालेको भी सुख पहुँचाना, काँटा चुभानेवालेको भी कोमल कुसुम देना और मारनेवालेको भी बचाना ! धन्य है !!

तदनन्तर राजाने बड़े आदरसे दुर्वासाजीके चरणयुग्मोंको छूकर उन्हें आदरपूर्वक भोजन कराया एवं उनके चले जानेके बाद ब्राह्मणभोजन करवाकर शेष वचे हुए पवित्र अन्नको प्रसादरूपसे ग्रहण किया ।

इसी प्रकार राजा अम्बरीप अपने समस्त कर्म परमात्मा वासुदेवको अर्पण करते हुए उनकी भक्तिमें लगे रहे । तदनन्तर उन्होंने राज्यका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर वनमें प्रवाण किया और अन्तमें गुणोंसे अतीत होकर वे परम कल्याणको प्राप्त हो गये ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !





श्रीमद्भिक्षु

भिक्षुगतोने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने विद्याकी रक्षा



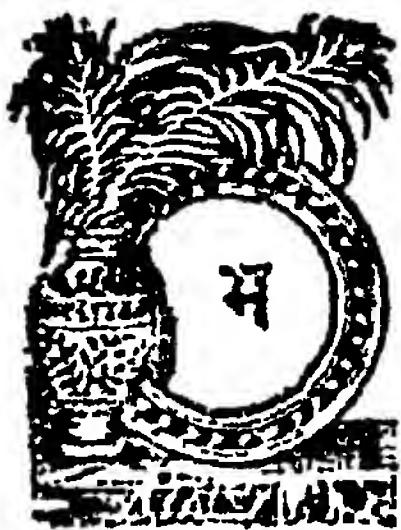
## भीष्मपितामह



परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः ।

यद्याप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथञ्चन ॥११॥

(भीष्म)



क्तराज भीष्मपितामह महाराज शान्तनुके और सपुत्र थे और गंगादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । वशिष्ठ ऋषिके शापसे आठों वसुओंने मनुष्योनिमें अवतार लिया था, जिनमें सातको तो गंगा जीने जन्मते ही जलके प्रवाहमें वहाकर शापसे छुड़ा दिया । घो नामक वसुके अंशावतार भीष्मको राजा शान्तनुने रख लिया । गंगादेवी पुत्रको उसके पिताके पास छोड़कर चली गयीं । बालकका नाम देवव्रत रखा गया ।

दासके द्वारा पालित हुई सत्यवतीपर मोहित हुए धर्मशील राजा शान्तनुको विपादयुक्त देखकर युक्तिसे देवव्रतने मन्त्रियोंद्वारा पिताके दुःखका कारण जान लिया और पिताकी प्रसन्नताके लिये

---

क्षमें त्रिलोकीका राज्य छोड़ सकता हूँ, देवताओंका राज्य भी छोड़ सकता हूँ और जो हन दोनोंसे अधिक है उसे भी छोड़ सकता हूँ, पर सत्य कभी नहीं छोड़ सकता ।'

सत्यवतीके धर्मपिता दासके पास जाकर उसकी इच्छानुसार 'राजसिंहासनपर न बैठने और आजीवन ब्रह्मचर्य पालनेकी' कठिन प्रतिज्ञा करके पिताका सत्यवतीके साथ विवाह करवा दिया। पितृभक्तिसे प्रेरित होकर देवतने अपना जन्मसिद्ध राज्याधिकार छोड़कर सदाके लिये लीसुखका भी परित्याग कर दिया, इसलिये देवताओंने प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करते हुए देवतका नाम भीम रखा। पुत्रका ऐसा त्याग देखकर राजा शान्तनुने भीमको वरदान दिया कि, 'तू जवतक जीना चाहेगा तवतक मृत्यु तेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगी, तेरी इच्छामृत्यु होगी।' निष्काम पितृभक्त और आजीवन अस्त्वलित ब्रह्मचारीके लिये ऐसा होना कौन बड़ी बात है? कहना नहीं होगा कि भीमने आजीवन प्रतिज्ञाका पालन किया!

भीमजी बड़े ही वीर योद्धा थे और उनमें क्षत्रियोंके सब गुण मौजूद थे। गीता (१८। ४३) में क्षत्रियोंके ये स्वाभाविक गुण कहे हैं कि—

शौर्यं तेजो धृतिर्दक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

अर्थात् 'वीरता, तेज, धैर्य, कुशलता, युद्धसे कभी न हटना, दान और ऐश्वर्यभाव—ये क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म हैं।'

भीमजीमें क्षत्रियोचित ये सब गुण प्रकट थे। वीरमूर्ति क्षत्रिय-कुल-संहारक परशुरामजीसे इन्होंने शखविद्या सीखी थी।

जिस समय परशुरामजीने भीष्मजीसे यह आग्रह किया कि तुम काशिराजकी कन्या अन्वासे विवाह कर लो, उस समय भीष्मजीने ऐसा करनेसे विलुप्त इनकार कर दिया और वड़ी नम्रतासे गुरुका सम्मान करते हुए अपनी खाभाविक शूरता और तेजभरे शब्दों-में कहा कि—

न भयान्नाऽप्यनुक्रोशान्नाऽर्थलोभान् काम्यया ।  
क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम् ॥  
( महा० उद्योग० १७८।३४ )

‘भय, दया, धनके लोभ और कामनासे मैं कभी क्षात्रधर्मका त्याग नहीं कर सकता, यह मेरा सदाका व्रत है ।’

परशुरामजीको बहुत कुछ समझानेपर भी जब वे नहीं माने और धर्मकी-पर-धर्मकी देने लगे, तब भीष्मने कहा—आप कहते हैं कि मैंने अकेले ही इस लोकके सारे क्षत्रियोंको इक्कीस बार जीत लिया था, उसका कारण यही है कि—

न तदा जातवान् भीष्मः क्षत्रियो वापि मढिधः ।

उस समय भीष्म या भीष्मके समान किसी क्षत्रियने पृथिवीपर जन्म नहीं लिया था, पर अब मैं आपके अभिमानको चूर्ण कर दूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

‘व्यप्नेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम ! न संशयः ॥’

परशुरामजी कुपित हो गये । युद्ध छिड़ गया और लगातार

तेर्इस दिनोंतक भयानक युद्ध होता रहा, परन्तु परशुरामजी भीष्मको परास्त नहीं कर सके। ऋषियों और देवताओंने आकर दोनोंको समझाया, परन्तु भीष्मने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार शख्स नहीं छोड़े। उन्होंने कहा—

मम व्रतमिदं लोके नाहं युद्धात् कदाचन ॥  
विमुखो विनिवर्त्यं पृष्ठतोऽभ्याहतः शरैः ।  
नाहं लोभान्न कार्पण्यान्न भयान्नार्थकारणात् ॥  
त्यजेयं शाश्वतं धर्ममिति मे निश्चिता मतिः ।

(महा० उद्घोग० १८५ । २५ । २७)

‘मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मैं युद्धमें पीठ दिखाकर पीछे से बाणोंका प्रहार सहता हुआ कभी निवृत्त नहीं होऊँगा। लोभ, दीनता, भय और अर्थ आदि किसी कारणसे भी मैं अपना सनातनधर्म नहीं छोड़ सकता, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।’

इक्कीस बार पृथिवीको क्षत्रियहीन करनेवाले अमित तेजस्वी परशुराम भीष्मको जीत नहीं सके, अन्तमें देवताओंने वीचमें पड़कर युद्ध बन्द करवाया परन्तु भीष्मकी प्रतिज्ञा भङ्ग न हुई!

जब सत्यवतीके दोनों पुत्र मर गये, भरतवंश और राज्यका कोई आधार नहीं रहा तब सत्यवतीने भीष्मसे राजगद्दी खीकार करने या पुत्रोत्पादन करनेके लिये कहा। भीष्म चाहते तो निष्कलङ्क कहलाकर राज्य और खीका सुख अनायास भोग सकते थे,

परन्तु अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये मनुष्यके मनको अत्यन्त आकर्षित करनेवाले इन दोनों भोगोपर उन्होंने लात मार दी । सत्यवतीके बहुत आग्रह करनेपर भीष्मने स्पष्ट कह दिया कि ‘माता ! तू इसके लिये आग्रह न कर । पञ्चमहाभूत चाहे अपना गुण छोड़ दें, सूर्य और चन्द्रमा चाहे अपने तेज और शीतलताको त्याग दें, इन्द्र और धर्मराज अपना बल और धर्म छोड़ दें परन्तु तीनों लोकोंके राज्यसुख या उससे भी अधिकके लिये मैं अपना प्रिय सत्य कभी नहीं छोड़ सकता ।’

भीष्मजीने दुर्योधनकी अनीति देखकर उसे कई बार भीठेकड़े शब्दोंमें समझाया था, पर वह नहीं समझा और जब युद्धका समय आया तब पाण्डवोंकी ओर मन होनेपर भी भीष्मने बुरे समयमें आश्रयदाताकी सहायता करना धर्म समझकर कौरवोंके सेनापति बनकर पाण्डवोंसे युद्ध किया । वृद्ध होनेपर भी उन्होंने दस दिनतक तरुण योद्धाकी तरह लड़कर रणभूमिमें अनेक बड़े-बड़े वीरोंको सदाके लिये सुला दिया और अनेकोंको घायल किया । कौरवोंकी रक्षा असलमें भीष्मके कारण ही कुछ दिनोंतक हुई । महाभारतके अठारह दिनोंके सारे संग्राममें दस दिनोंका युद्ध अकेले भीष्मजीके सेनापतित्वमें हुआ, शेष आठ दिनोंमें कई सेनापति बदले । इतना होनेपर भी भीष्मजी पाण्डवोंके पक्षमें सत्य देखकर उनका मंगल चाहते और यह मानते थे कि अन्तमें जीत पाण्डवोंकी होगी ।

भीष्मजी ज्ञानी, दृढ़प्रतिज्ञ, धर्मविद्, सत्यवादी, विद्वान्, राजनीतिज्ञ, उदार, जितेन्द्रिय और अप्रतिम योद्धा होनेके साथ ही भगवान्‌के अनन्य भक्त थे । श्रीकृष्णमहाराजको साक्षात् भगवान्‌के रूपमें सबसे पहले भीष्मजीने ही पहचाना था । धर्मराजके राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरके यह पूछनेपर कि 'अग्रपूजा किसकी होनी चाहिये,' भीष्मजीने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि 'तेज, वल, पराक्रम तथा अन्य सभी गुणोंमें श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम पूजा पाने योग्य हैं ।' भीष्मकी आज्ञासे सहदेवके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा होनेपर जब शिशुपाल आदि राजा विगड़े और उत्तेजित होकर कहने लगे कि 'इस घमण्डी वृद्धेको पशुकी तरह काट डालो या इसे खौलते हुए तेलकी कड़ाहीमें डाल दो' तब भीष्मने कुछ भी न घबराकर खाभाविक तेजसे तमककर कहा कि 'हम जानते हैं श्रीकृष्ण ही समस्त लोकोंकी उत्पत्ति और विनाशके कारण हैं, इन्होंके द्वारा यह चराचर विश्व रचा गया है, यही अव्यक्त प्रकृति, कर्ता, सर्वभूतोंसे परे सनातन ब्रह्म है, यही सबसे बड़े पूजनीय है और जगत्के सारे सद्गुण इन्होंमें प्रतिष्ठित हैं । सब राजाओंका मान मर्दनकर हमने श्रीकृष्णकी अग्रपूजा की है, जिसे यह मान्य न हो वह श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेको तैयार हो जाय । श्रीकृष्ण सबसे बड़े हैं, सबके गुरु हैं, सबके बन्धु हैं और सब राजाओंसे पराक्रममें श्रेष्ठ हैं, इनकी अग्रपूजा जिन्हें अच्छी नहीं लगती उन मूरखोंको क्या समझाया जाय ?'

यज्ञमें विष्णकी सम्भावना देखकर जब धर्मराजने भीष्मसे यज्ञरक्षाका उपाय पूछा तब भीष्मने हृषि निश्चयके साथ कह दिया— ‘युधिष्ठिर ! तुम इसकी चिन्ता न करो, शिशुपालकी खबर श्रीकृष्ण आप ही ले लेंगे ।’ अन्तमें शिशुपालके सौ अपराध पूरे होनेपर भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ उसे चक्रसे मारकर अपनेमें मिला लिया ।

महाभारत-युद्धमें भगवान् श्रीकृष्ण शश्व प्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा करके सम्मिलित हुए थे । वे अपनी भक्तवत्सलताके कारण सखाभक्त अर्जुनका रथ हाँकनेका काम कर रहे थे । बीचहीमें एक दिन किसी कारणवश भीष्मने यह प्रण कर लिया, ‘भगवान्-को शश्व प्रहण करवा दूँगा ।’ सूरदासजी भीष्मप्रतिज्ञाका बड़ा सुन्दर वर्णन करते हैं—

आज जो हरिहिं न सख्त गहाऊँ ।

तौ लाजौं गंगा जननीको, सांतनु-सुत न कहाऊँ ॥

स्यन्दन खंडि महारथ खंडौं, कपिध्वजसहित हुलाऊँ ।

इती न करौं सपथ मोहिं हरिकी छत्रिय गतिहिं न पाऊँ ॥

पाण्डवदल सनमुख है धाऊँ सरिता रुधिर बहाऊँ ।

सूरदास रनभूमि विजय विन जियत न पीठ दिखाऊँ ॥

भीष्मने यही किया । भगवान्-को अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी । जगत्पति पीताम्बरधारी वासुदेव श्रीकृष्ण बार-बार सिंहनाद करते हुए हाथमें रथका टूटा चक्र लेकर भीष्मकी ओर ऐसे दौड़े जैसे बनराज सिंह गरजते हुए विशाल गजराजकी ओर दौड़ता है ।

भगवान्‌का पीला दुपहा कन्धेसे गिर पड़ा । पृथिवी काँपने लगी । सेनामें चारों ओरसे 'भीष्म मारे गये' 'भीष्म मारे गये' की आवाज आने लगी । परन्तु इस समय भीष्मको जो असंभ आनन्द था उसका वर्णन करना सामर्व्यके बाहरकी बात है । भगवान्‌की भक्तवत्सलतापर मुग्ध हुए भीष्म उनका स्नान करते हुए बोले—

एह्ये हि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोस्तु ते ।

मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्त्र महाद्वे ॥

त्वया हि देवसंग्रामे हतस्यापि समानव ।

श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ॥

सम्मावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाद्य संयुगे ।

प्रहारस्त्र यथेष्ट वै दासोऽस्मि तव धानव ॥

अर्थात् 'हे पुण्डरीकाक्ष ! आओ, आओ ! हे देवदेव !! तुमको मेरा नमस्कार है । हे पुरुषोत्तम ! आज इस महातुद्धमें तुम मेरा वध करो ! हे परमात्मन् ! हे कृष्ण ! हे निष्पाप ! हे गोविन्द ! तुम्हारे हाथसे युद्धमें मरनेपर मेरा अवश्य ही सब प्रकारसे परम कल्याण हो जायगा । मैं आज त्रैलोक्यमें सम्मानित हूँ । हे पापरहित ! मुझपर तुम युद्धमें इच्छानुसार प्रहार करो, मैं तुम्हारा दास हूँ ।'

अर्जुनने पीछेसे दौड़कर भगवान्‌के पैर पकड़ लिये और उन्हें लौटाया । भगवान् तो अपने भक्तकी प्रतिज्ञा सत्य करनेको दौड़ थे, भीष्मका वध तो अर्जुनके हाथसे ही होना था !

अन्तमें शिखण्डीके सामने वाण न चलानेके कारण अर्जुन-  
के वाणोंसे विंधकर भीष्म शरशश्यापर गिर पड़े । भीष्म  
वीरोचित शश्यापर सोये थे, उनके सारे शरीरमें वाण विंधे थे,  
केवल सिर नीचे लटकता था । उन्होंने तकिया माँगा, दुर्योधनादि  
नरम-नरम तकिया लाने लगे । भीष्मने अन्तमें अर्जुनसे कहा—  
चत्स ! मेरे योग्य तकिया दो । अर्जुनने शोक रोककर तीन वाण  
उनके मल्लकाके नीचे इस तरह मारे कि सिर तो ऊँचा उठ गया  
और वे वाण तकियाका काम देने लगे । इससे भीष्म बड़े ग्रसन  
हुए और बोले कि—

शयनस्यानुस्पं मे पाण्डवोपहितं त्वया ।

यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुपा ॥

एवमेव महायाहो धर्मेषु परितिष्ठता ।

स्वसञ्जं क्षत्रियेणाऽऽजौ शरत्त्वपगतेन वै ॥

(महा० भीष्म० १२० । ४८-४९ )

अर्धात् 'हे पुत्र अर्जुन ! तुमने मेरे रणशश्याके योग्य ही  
तकिया देकर मुझे ग्रसन कर लिया । यदि तुम मेरी वात न समझ  
कर दूसरा तकिया देते तो मैं नाराज होकर तुम्हें शाप दे देता ।  
क्षात्रधर्ममें दृढ़ रहनेवाले क्षत्रियोंको रणाङ्गणमें प्राण-त्याग करने-  
के लिये इसी प्रकारकी वाणशश्यापर सोना चाहिये ।'

भीष्मजी शरशश्यापर वाणोंसे घायल पड़े थे, यह देखकर अनेक  
कुशल शखवैष बुलाये गये कि वे वाण निकालकर मरहम-पट्टी

करके धावोंको ठीक करें, पर अपने इष्टेव भगवान् श्रीकृष्णको सामने देखते हुए मृत्युका प्रतीक्षाने वीरशास्त्रापर शान्तिने संये हुए भीमजीने उन्हें भगवान्पूर्वक लैटा दिया। धन्य वीरता और धन्य शीरता !

जिस प्रकार अटल और हृषीकेश भीमजीने आजन्म अपने सत्य, धर्म और प्रतिज्ञाका पालन किया थह, कभी भूलनेवाली बात नहीं है। ऐसे अद्वितीय वीरका संभान यहाँने लिये क्षणियोंने नित्य-तर्पणमें भी भीमपितामहके लिये जलाशुद्धि देनेका इस प्रकार विशेषरूपसे विधान किया थि—

वीथावपदगोत्राय सात्कृतप्रबराय च ।  
अपुत्रिणे ददाम्येतज्जलं भीमाय यर्मणे ॥

तर्पणमें क्षत्रिय ही नहीं, श्रावण भी भीमपितामहको जलाशुद्धि देते हैं। वास्तवमें यह तर्पण करना भीमपितामहकी और भारतके लोगोंका सदाके लिये उनकी याद बनाये रखता है।

भीमजीका वह शरीर गया, परन्तु जबतक भारतका नाम है, जबतक भीमपितामहकी अलौकिका दिव्य वाणीसे भरे हुए महाभारतके शान्ति और अनुशासनपूर्व उपलब्ध होते हैं तबतक उनकी अक्षय अमरता कभी मिट नहीं सकती। भारतवासियोंको उनके दिव्य उपदेशोंसे पूरी तरह लाभ उठाकर अपने जीवनको निष्काम प्रेमभावसे भगवान्की सेवामें लगाकर सफल करना चाहिये।

आठ दिनोंके बाद युद्ध समाप्त हो गया । धर्मराजका राज्याभिषेक हुआ । एक दिन युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और दोनों हाथ जोड़कर पलङ्गके पास खड़े हो गये, प्रणाम करके मुस्कुराते हुए युधिष्ठिरने भगवान्‌से कुशल-क्षेम पूछा परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला । भगवान्‌को इतना ध्यानमग्न देखकर धर्मराज बोले—‘प्रभो ! आप किसका ध्यान करते हैं ? मुझे बताइये, मैं आपके शरणागत हूँ, भक्त हूँ ।’ भगवान्‌ने उत्तर दिया—‘धर्मराज ! शरशब्दापर सोते हुए नरशार्दूल भीष्म मेरा ध्यान कर रहे थे, उन्होंने मुझे स्मरण किया था इसलिये मैं भीष्मका ध्यान कर रहा था । भाई ! इस समय मैं मनद्वारा भीष्मके पास गया था ।’

फिर भगवान्‌ने कहा कि ‘युधिष्ठिर ! वेद और धर्मके सर्वोपरि ज्ञाता नैष्ठिक ब्रह्मचारी महान् अनुभवी कुरुकुलसूर्य पितामहके अस्त होते ही जगत्का ज्ञानसूर्य भी निस्तेज हो जायगा । अतएव वहाँ चलकर कुछ उपदेश ग्रहण करना हो तो कर लो ।’

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण महाराजको साथ लेकर भीष्मके पास गये । सब वड़े-वड़े ब्रह्मवेत्ता ऋषि-मुनि वहाँ उपस्थित थे । भीष्मने भगवान्‌को देखकर प्रणाम और स्तवन किया । श्रीकृष्णने भीष्मसे कहा कि ‘उत्तरायण आनेमें अभी तीस दिनकी देर है, इतनेमें आपने धर्मशालका जो ज्ञान सम्पादन किया है वह युधिष्ठिरको सुनाकर इनके शोकको दूर कोजिये ।’ भीष्मने कहा—‘प्रभो !

## आदर्श भक्त

३६

मेरा शरीर व्याणोंके धारोंसे व्याकुल हो रहा है, मन-बुद्धि चञ्चल है, बोलनेकी शक्ति नहीं है, वारम्बार मूर्च्छा आती है, केवल आपकी कृपासे ही अव्रतक जी रहा हूँ, फिर आप जगद्गुरुके सामने मैं शिष्य यदि कुछ कहूँ तो वह भी अविनय ही है। मुझसे बोला नहीं जाता, क्षमा करें।' प्रेमसे उल्कर्ता हुई आँखोंसे भगवान् गद्दद होकर बोले—‘भीष्म ! तुम्हारा ग्लानि, मूर्च्छा, दाह, व्यथा, क्षुधा, श्लेष और मोह सब मेरी कृपासे अभी नष्ट हो जायेंगे, तुम्हारे अन्तःकरणमें सब प्रकारके ज्ञानकी स्फुरणा होगी, तुम्हारी बुद्धि निश्चयात्मिका हो जायगी, तुम्हारा मन नित्य सत्त्वगुणमें स्थिर हो जायगा, तुम धर्म या जिस किसी भी विद्वाका चिन्तन करोगे, उसीको तुम्हारी बुद्धि वताने ले जाएगी।' श्रीकृष्णने फिर कहा कि, ‘मैं स्वयं इसीलिये उपदेश न करके तुमसे करवाता हूँ जिससे मेरे भक्तकी कीर्ति और यश बढ़े।' भगवत्-प्रसादसे भीष्मके शरीरकी सारी वेदनाएँ उसी समय नष्ट हो गयीं, उनका अन्तःकरण सावधान और बुद्धि सर्वथा जागृत हो गयी।

- ब्रह्मचर्य, अनुभव, ज्ञान और भगवद्गतिके प्रतापसे अगाध ज्ञानी भीष्म जिस प्रकार दस दिनोंतक रणमें तरुण उत्साहसे झूमे थे, उसी प्रकारके उत्साहसे युधिष्ठिरको आपने धर्मके सब अङ्गोंका पूरी तरह उपदेश दिया और उनके शोक-सन्तप्त हृदयको शान्त कर दिया। इस प्रकार भगवान्‌के सामने, क्रृपियोंके समूहसे घिरे हुए धर्मचर्चा करते-करते जब उत्तम उत्तरायणकाल आया तो

भीष्मजी मौन हो गये और उन्होंने पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्णमें पूरी तरह मन लगा दिया और इस प्रकार उनकी लुति करने लगे—

इति मतिरूपकल्पिता वितृष्णा  
भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूत्ति ।  
स्वसुखसुपगते क्षचिद्धिहर्तुं  
प्रदृतिसुपेयुपि यद्वप्रवाहः ॥ ३२ ॥

त्रिभुवनकमनं तमालवणं  
रविकरणीरवराम्बरं दधाने ।  
वपुरलक्कुलावृताननावर्जं  
विजयसखे रतिरस्तु मैडनवद्या ॥ ३३ ॥

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-  
कचलुलितश्रमवार्यलङ्घतास्ये ।

मम निशितशरावभिद्यमान-  
त्वच्चिविलस्तकवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४ ॥

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये  
निजपरयोर्वलयो रथं निवेश्य ।

स्थितवति परसैनिकागुरुद्धणा  
हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥ ३५ ॥

व्यवहितपृतनासुखं निरीक्ष्य  
स्वजनवधाद्विसुखस्य दोपद्वद्या ।

कुमतिमहरदात्मविद्यया य-  
 श्ररणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥ ३६ ॥  
 खनिगममपहाय मत्प्रतिष्ठा-  
 मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।  
 धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-  
 हर्हरिव हन्तुमिभं गतोक्तरीयः ॥ ३७ ॥  
 शितविशिष्टहतो विशीर्णदंशः  
 क्षतजपरिष्टुत आततायिनो मे ।  
 प्रसभमभिससार मद्भार्थ  
 स भवतु मे भगवानातिमुर्कुन्दः ॥ ३८ ॥  
 विजयरथकुटुम्ब आततोत्रे  
 धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ।  
 भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षे-  
 यमिह निरीक्ष्य हतागताः सरूपम् ॥ ३९ ॥  
 ललितगतिविलासचल्लगुहास-  
 प्रणयनिरीक्षणकलिपतोरुमानाः ।  
 कृतमनुकृतवत्य उत्तमदान्धाः  
 प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४० ॥  
 सुनिगणनृपवर्यसङ्क्लेऽन्तः-  
 सदसि युधिष्ठिरराजसूय एपाम् ।  
 अर्हण्मुपपेद ईक्षणीयो  
 मम हशिगोचर एष आविरात्मा ॥ ४१ ॥

तमिममहमजं शरीरभाजां  
हृदि हृदि विष्टुतमात्मकल्पतानाम् ।  
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं  
समधिगतोऽस्मि विधूतमेदमोहः ॥५२॥  
( श्रीमद्भा० १ । ९ )

अर्थात् 'मैंने इस तरह उन यादवपुज्ञव एवं सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णमें कामनारहित बुद्धि अर्पित कर दी है, जिन आनन्दमय ब्रह्मसे प्रकृतिका संयोग होनेपर यह संसार चलता है ॥ ३२ ॥ त्रिभुवन-सुन्दर एवं तमाल-तरुके समान इयामशारीर और सूर्य-किरणके-से गौरवर्ण सुन्दर वज्रको धारण किये और अलकावलिसे आवृत सुशोभित मुख-कमलत्राले अर्जुनके मित्र श्रीकृष्णमें मेरी निष्काम भक्ति हो ॥ ३३ ॥ युद्धमें बोड़ोंकी रज पड़नेसे धूम्रवर्ण एवं चञ्चल अलकावली और श्रमजनित प्रस्त्रेद-विन्दुओंसे अलंकृत है मुख जिनका, और मेरे तीक्ष्ण वाणोंसे कवच कट जानेपर भिन्न हो रही है त्वचा जिनकी, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा मन रमण करे ॥ ३४ ॥ सखाके कहनेपर शीघ्र ही अपनी-परायी दोनों सेनाओंके बीचमें रथ स्थापित करके शत्रुपक्षकी सेनाके वीरोंकी आत्म उनकी ओर देखकर ही जिन्होंने हर ली उन अर्जुनके मित्र श्रीकृष्णमें मेरा मन रमे ॥ ३५ ॥ सम्मुख स्थित शत्रुसेनामें आगे खजनोंको मरने-मारने-पर उबत देखकर जब अर्जुन खजन-वधको दोप समझकर धनुप-वाण त्यागकर खजन-वधसे निवृत्त हो गये तब जिन्होंने

आत्मज्ञानका उपदेश करने अर्जुनको उन्मुदितो हर लिया उन परमेश्वर श्रीकृष्णके चरण-नामांगने में गति हो ॥ ३६ ॥ उन्होंने भी शब्द नहीं ग्रहण करेंगा' उपनी इन प्रनिदानों व्यागर से श्रीकृष्णके शरा ग्रहण करा देंगा' मेरी इन प्रनिदानों द्वाय यारनेके लिये रथसे बूढ़कर रथका चक्रा छापमें लेकर जो मुझे गारनेकी इस तरह वेगसे दौड़े जैसे लायीके गारनेको निर्द दाराना है तब श्रुतियों उनके प्रतिपद्मों काँपने लगा और करनेमें दूसरा निर गया, वैसी शोभाको प्राप्त हुए उन श्रीकृष्णको मैं जारग हूँ ॥ ३७ ॥ नेरे थेने वाणोंके प्रहारसे कबच टट गया और व्यामनुदार-शर्णुर शृणुसे लाल हो गया तब जो मुझ सशालने गारनेको लिये रेखों दीरे वे भक्तवत्सल भगवान् मेरी गति हों ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथपर स्थित होकर एक हाथसे चाकुक उठाये और एक छापसे पांचोंकी उगाम पकड़े जो दर्शनीय शोभायुक्त श्रीकृष्णभगवान् हैं उनमें नुम मरनेवालेकी रति हो; जिस उविष्ठो देवयार भगवान्नुदमें मरे हुए सब शूरवीर साख्यमुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ वायनी ललित गति, विलास, मनोहर हास, प्रेमनय निरादृण आदिसे गोपियोंके मान करनेपर जब श्रीकृष्णजी अन्तर्हित हो गये तब विरहसे व्याकुल गोपियाँ भी जिनकी लीलाका अनुकरण करके तान्मय हो गयीं, ऐसे भक्तिसे प्राप्त होनेवाले श्रीकृष्णमें मेरी दृढ़ भक्ति हो ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें अनेक ऋषि-मुनि और महिपालोंसे सुशोभित सभाभवनके बीच प्रथम जिनकी पूजा हुई, वही

सर्वश्रेष्ठ जगत्पूज्य परमल्ल इस समय मेरे नेत्रोंके सामने हैं ।  
अहोभाग्य ! मैं कृतार्थ हो गया ॥ ४१ ॥ अब जन्म-कर्म-रहित  
और अपने ही उत्पन्न किये प्राणियोंके हृदयमें जो एक होकर भी  
अनेक पात्रोंमें पड़े हुए प्रतिविम्बद्वारा अनेक रूप प्रतीत होनेवाले  
सूर्यकी भाँति अनेक रूप प्रतीत होते हैं उन ईश्वर श्रीकृष्णको  
भेददृष्टि और मोहसे शून्य चित्तद्वारा मैं प्राप्त हुआ हूँ ॥ ४२ ॥

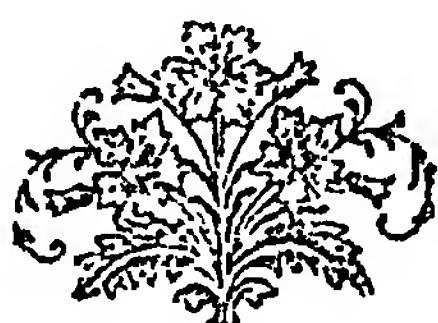
एक सौ पेंतीस वर्षकी अवस्थामें उत्तरायणके समय सैकड़ों  
ब्रह्मवेता ऋषि-मुनियोंके वीचमें इस प्रकार साक्षात् भगवान्  
श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए—

कृष्ण एवं भगवति मनोवागदृष्टिवृत्तिभिः ।

आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥

( श्रीमद्भा० १ । ९ । ४३ )

‘आत्मरूप भगवान् श्रीकृष्णमें मन, वाणी और दृष्टिको स्थिर  
करके भीष्मजी परम शान्तिको प्राप्त हो गये !’

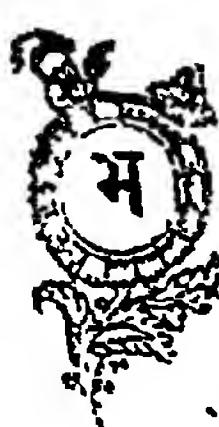


## पाण्डव अर्जुन



नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवां सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

  
गवान् नारायण और वागीश्वरी शारदा के साथ ही नरोत्तम नर अर्जुन को प्रणाम करके भगवान् व्यास ग्रन्थारम्भ करते हैं, इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि भक्तश्रेष्ठ वीरवर अर्जुन किस श्रेणीके महापुरुष थे । कौरवोंको समझाते हुए पितामह भीष्म कहते हैं—

एष नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः ।

नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम् ॥

( महा० उद्योग० ४६ । २० )

‘श्रीकृष्ण नारायण हैं और अर्जुन नर हैं, एक ही सत्त्व दो रूपमें प्रकट हुए हैं ।’ अधिक क्या, गीतामें भगवान्‌ने ख्यं अपने श्रीमुखसे ‘पाण्डवानां धनञ्जयः’ कहकर अर्जुन को अपना खरूप घोषित किया है, अतएव अर्जुन की महिमाको मुझ-सरीखा मनुष्य क्या समझे और क्या कहे । परन्तु उनके जीवनकी बातोंके स्मरणसे हृदय पवित्र होता है, इसी कारण उनके विषयमें कुछ लिखें जाता है ।

भक्त अर्जुन और उनके सारथि भगवान् श्रीकृष्ण





भक्तवर अर्जुन पाँचों पाण्डवोंमें विचले भाई थे । ये इन्द्रसे उत्पन्न तथा नर भगवान्‌के अवतार थे । महाभारतके पात्रोंमें अर्जुन सबसे प्रधान थे । भगवान् श्रीकृष्णके समवयस्क और सखा थे । अर्जुनका वर्ण भी श्रीकृष्णकी भाँति श्याम और चित्ताकर्षक था । ये महान् शूरवीर, धीर, दयालु, उदार, न्यायशील, निष्पाप, चतुर, दृढ़प्रतिज्ञ, सत्यप्रिय, आचार्य और गुरुजनोंके भक्त, बुद्धिमान्, विद्वान्, जितेन्द्रिय, ज्ञानी और भगवान्‌के अनन्य भक्त थे । भगवान्‌की भक्तिका उनके लिये सबसे वडा यही प्रमाण है कि जिस गीताशास्त्रके अध्ययन और विचारसे अवतक अगणित साधक परम सिद्धिको प्राप्त कर चुके हैं, जो गीताशास्त्र सहस्रों साधु-महात्माओंको परमात्माका पवित्र पथ दिखलानेके लिये उनका पथ-प्रदर्शक और परम धामतक पहुँचा देनेके लिये परम पायेय बन रहा है उस गीतामृतके पान करनेका सबसे पहला अधिकारी यदि कोई हुआ तो वह अर्जुन ही हुए । उस समय अनेक ऋषि-मुनि तथा भीष्म-युधिष्ठिर-सरीखे राजर्षियोंकी कमी नहीं थी, परन्तु भगवान्‌ने गीता सुनानेके लिये अपने अन्तरंग सखा और परम श्रद्धालु अर्जुनको ही चुना । इसीसे अर्जुनका भगवान्‌में परम प्रेम होना सिद्ध हो जाता है ।

जिस समय दुर्योधन भगवान् श्रीकृष्णके महलमें युद्धमें सहायता माँगने गये, उस समय भगवान् सो रहे थे । दुर्योधन उनके सिरहाने एक आसनपर बैठ गये, पीछेसे अर्जुन पहुँचे, वे

नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर श्रीकृष्णके चरणोंमें बैठ गये । श्रीकृष्णने जागनेपर पहले सामने बैठे हुए अर्जुनको और पीछे दुर्योधनको देखा । उन्होंने दोनोंका स्वागत-सत्कार किया । दुर्योधनने कहा, 'युद्धमें आपकी सहायता माँगनेके लिये पहले मैं आया हूँ, अर्जुन पीछे आया है, आप मेरी तरफ ही आवें ।' इसपर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'दुर्योधन ! आप पहले आये यह यथार्थ है, पर मैंने पहले अर्जुनको देखा, इसलिये मैं दोनोंकी सहायता करूँगा ।' बात सच है, सामने चरणोंमें बैठा हुआ ही पहले दीख पड़ता है, सिरपर बैठा हुआ नहीं । मतलब यह कि सत्रको नम्रतापूर्वक भगवान्‌के समुख ही होना चाहिये, न कि ऐंठकर उनके सिर चढ़ना ।

भगवान्‌ने कहा कि, 'एक ओर तो मेरे समस्त यादव वीर सशस्त्र सहायता करेंगे और दूसरी ओर मैं अकेला रहूँगा, परन्तु मैं नं तो शश ग्रहण करूँगा और न युद्ध करूँगा । जिसकी जो इच्छा हो सो माँग ले । पर दोनोंमेंसे एक चीज माँग लेनेका पहला अधिकार अर्जुनका है, क्योंकि मैंने पहले उसे ही देखा है ।' परीक्षाका समय है । एक ओर भगवान्‌का वल—ऐश्वर्य है, दूसरी ओर स्वर्य शशहीन भगवान् हैं । भोग चाहनेवाला मनुष्य भगवान्‌को और भगवान्‌को चाहनेवाला भोगको नहीं चाहता । अर्जुन भगवान्‌के ग्रेमी थे, भोगके नहीं । उन्होंने कहा, 'अकेले श्रीकृष्ण ही मेरे सर्वस्त्र हैं, वे ही मेरी सहायता करें ।' परीक्षामें अर्जुन उत्तीर्ण हो गये । भोगबुद्धिवाले दुर्योधनने सोचा, 'बड़ा

अच्छा हुआ जो अर्जुनने निःशास्त्र और युद्धविमुख कृष्णको माँग लिया और मुझे यादव योद्धा मिल गये।' अर्जुनको युद्ध करनेवाले वीरोंकी कम आवश्यकता थी सो बात नहीं है, परन्तु उन्होंने वीरोंकी अपेक्षा अकेले श्रीकृष्णकी कीमत बहुत अधिक समझी; इसी प्रकार जो भोगोंकी अपेक्षा भगवान्‌की कीमत अधिक समझते हैं,—भगवान्‌के लिये बड़े-से-बड़े भोगोंका त्याग करनेके लिये सहर्ष प्रस्तुत रहते हैं, वे ही भगवान्‌के सब्दे भक्त हैं और उन्हींको भगवान्‌ मिलते हैं। इसीलिये भगवान्‌ने अर्जुनके रथकी लगाम हाथमें लेकर निस्संकोच सारथीका क्षुद्र कार्य किया, पर यदि भगवान्‌ इस ओर न आते, रथ न हाँकते तो महाभारतका इतिहास दूसरी ही तरह लिखा जाता। फिर संजय यह नहीं कह सकते कि 'यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीविंजयो श्रुतिर्द्विवा नीतिर्मातिर्मम॥' और न जगत्‌का उद्धार करनेवाली गीता ही आज हमें मिलती। यह अर्जुनकी भक्तिका ही परिणाम समझना चाहिये। अर्जुन-सरीखे वत्स मिलनेपर ही श्रुतिरूपी गौढ़ुही जा सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गीता-जैसी महान्‌ सम्पत्ति अर्जुनके कारण जगत्‌को मिली, इसलिये समस्त जगत्‌को सदाके लिये अर्जुनका कृतज्ञ होना चाहिये।

अर्जुनमें महापुरुषोंके सब गुण मौजूद थे, गुरु-दक्षिणाके लिये अर्जुनने द्रुपदका दर्प चूर्ण किया, बड़े भाईके सम्मानके लिये अर्जुनने युधिष्ठिरकी सब बातें मार्नीं, राजधर्म और सत्यताके

पालनके लिये अर्जुनने वारह वर्षका देशनिकाल स्वयं माँग-  
कर लिया !

माताकी आज्ञा और पूर्वजन्मके कई शाप-वरदानोंके कारण  
देवी द्रौपदीका विवाह पाँचों पाण्डवोंके साथ हुआ । इसके कुछ  
काल बाद नारद मुनि पाण्डवोंके पास आये और उन्होंने तिलोत्तमा  
अप्सराके कारण सुन्द-उपसुन्द नामक दो राक्षस-भ्राताओंके परस्पर  
लड़कर नष्ट हो जानेका इतिहास खुनाकर यह कहा कि ‘तुम  
पाँचों भाइयोंके एक ही स्त्री होनेके कारण कहाँ आपसमें वैमनस्य  
होकर सबका नाश न हो जाय इसलिये तुम लोगोंको एक ऐसा  
नियम बना लेना चाहिये जिससे कभी वैमनस्यकी सम्भावना ही  
न रहे ।’ इसपर नारदजीकी सम्मतिसे पाँचों भाइयोंने मिलकर यह  
नियम बनाया कि ‘प्रत्येक भाई दो महीने वारह दिनके क्रमसे  
द्रौपदीके पास जायँ । यदि कोई भाई वाचमें द्रौपदीके साथ  
एकान्तमें दूसरे भाईको देख ले तो वह वारह वर्षका निर्वासन  
स्वीकार करे ।’

पाँचों भाई इसी नियमके अनुसार वर्तवि करते रहे । एक  
दिन एक ब्राह्मणकी गायें चोरोंने चुरा लीं । ब्राह्मण यह चिह्नाते  
हुए राजमहलके आसपास घूम रहा था कि ‘चोरको सजा देकर  
मेरी गायें छूँढ़ दो ।’ किसीने जब कोई उत्तर नहीं दिया तब  
ब्राह्मणने यह कहा कि ‘जो राजा प्रजासे उसकी आमदनीका छठा  
भाग लेकर भी उसकी रक्षा नहीं करता वह अत्यन्त पापाचारी

है।' आजकलकी-सी बात होती तो ब्राह्मणको अवश्य कारागारकी हवा खानी पड़ती, पर पाण्डव राजधर्मसे परिचित थे, इसलिये ऐसा न हो सका। अर्जुनने ब्राह्मणकी पुकार सुनते ही उसे आश्वासन दिया और हथियार लानेके लिये वे अन्दर जाने लगे। पीछेसे जब यह पता लगा कि महाराज युधिष्ठिर द्वौपदीके साथ एकान्तमें हैं तब वे विचार करने लगे कि 'अब क्या करना चाहिये, अन्दर जानेसे नियम टूटता है और फलतः वारह वर्षके लिये राज्यसे निर्वासित होना पड़ता है। ऐसा न करनेसे क्षत्रियधर्म और प्रजापालनमें वाधा आती है।' अन्तमें अर्जुन यह निश्चय करके अन्दर चले गये 'चाहे महाराजका अनादर हो, मुझे अधर्म हो, मेरा वनगमन या मरण हो पर प्रजापालनरूपी राजधर्मको कभी नहीं छोड़ूँगा, क्योंकि शरीर हृष्टनेपर भी धर्म बना रहता है।'

भीतरसे शख लाकर अर्जुनने लुटेरोंका पीछा कर उन्हें योग्य दण्ड दिया और उनसे गायें छुड़ाकर ब्राह्मणको प्रदान की। राजधर्मपालनके लिये जो घरका नियम तोड़ा अब उसका दण्ड भी तो भोगना चाहिये। अर्जुनने आकर धर्मराजसे कहा, 'मैंने द्वौपदीके साथ एकान्तमें आपको देखकर नियम तोड़ दिया है, इसलिये मुझे वारह वर्षके लिये वन जानेकी आज्ञा दीजिये।' धर्मराजने अर्जुनको बहुत समझाया परन्तु धर्मके प्रतिकूल राज्यसुख भोगना अर्जुनने उचित नहीं समझा और धर्मराजसे कहा—

न व्याजेन चरेद्वर्ममिति मे भवतः श्रुतम् ।

न सत्याद्विचलिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥

‘महाराज ! आपहींसे तो मैंने सुना है कि धर्मपालनमें बहानेवाजी कभी नहीं करनी चाहिये । मैंने सत्यहींसे शख प्राप्त किये हैं, अतः मैं सत्यसे विचलित नहीं हो सकता ।’ युधिष्ठिरके वचनोंसे लाभ उठाकर अर्जुनने अपना मन सत्यसे नहीं डिगने दिया और युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर वे तुरन्त वनमें चले गये । धर्मपालन और सत्यपरायणताका कैसा सुन्दर उदाहरण है । अब एक जितेन्द्रियताका अद्भुत प्रमाण देखिये ।

अर्जुनने भगवान् महादेवजींसे युद्ध करके उन्हें प्रसन्नकर उनसे अमोघ ‘पाशुपत’ के धारण, मोक्ष और संहारकी क्रिया सीखी, तदनन्तर यम, वरुण, कुवेर आदि लोकपालोंको प्रसन्नकर उनसे क्रमशः गदा, पाश और अन्तर्धान तथा प्रस्तापन नामक अख्य ग्रहण किये । इतनेहींमें अर्जुनको बुलानेके लिये देवराज इन्द्रका सारथी मातलि रथ लेकर वहाँ आ गया और अर्जुन उसपर बैठकर आकाशमार्गसे भिन्न-भिन्न विचित्र लोकोंको देखते हुए सदैह स्वर्ग पहुँचे । वहाँ पाँच साल रहकर अर्जुनने दिव्य शखाखा प्राप्त किये और चित्रसेन गन्वर्वसे गाने-बजाने और नाचनेकी कला सीखी ।

एक दिन इन्द्र-सभामें स्वर्गीय अप्सराओंका नाच-गान हो रहा था, महावीर अर्जुन इन्द्रके साथ सिंहासनपर बैठे हुए थे ।

इन्द्रने देखा, 'अर्जुनकी दृष्टि लगातार उर्वशीपर पड़ रही है।' अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये इन्द्रने एकान्तमें चित्रसेनसे कह दिया कि तुम उर्वशीको समझा दो कि वह आज रातको अर्जुनके पास जाय। चित्रसेनने इन्द्रका सन्देशा उर्वशीको अकेलेमें कह दिया। अर्जुनके इयामसुन्दर, अत्यन्त तेजस्वी तथा मनोहर बदन, उसकी मत्तगजेन्द्रकी-सी चाल, सिंहके-से उन्नत स्कन्ध, कमल-पत्र-से विशाल नेत्र, तत्त्ववेत्ताकी-सी मधुर तथा नम्र वाणी और विष्णुका-सा पराक्रम देखकर उर्वशी पहलेसे ही उसपर मोहित थी। उसने इन्द्रका सन्देशा बड़ी प्रसन्नताके साथ स्वीकार किया। उसी दिन रातको दिव्य चाँदनीमें मुनि-मन हरण करनेवाली उर्वशी सुन्दर वस्त्रालङ्घारोंसे सुसज्जित होकर एकान्तमें अर्जुनके महलपर गयी। अर्जुन इतनी रातको अपने शयनागारमें सजी-धजी उर्वशीको देखकर बड़े लजित हुए और भस्तक अवनत करके पूज्यभावसे उसका बड़ा स्वागत किया। उर्वशीने इन्द्रका सन्देशा सुनाकर अपना मनोरथ पूर्ण करनेके लिये अर्जुनसे विनयपूर्वक प्रार्थना की। परन्तु इससे जितेन्द्रिय अर्जुनके मनमें कोई क्षोभ या विकार नहीं हुआ। अर्जुनने कहा—'माता ! आप हमारे पुरुवंशके पूर्वज महाराज पुरुरवाकी भार्या हैं, भरतकुलकी जननी हैं, इसीलिये मैंने राजसभामें आपकी ओर मातृभावसे देखकर मन-ही-मन प्रणाम किया था। देवराजने समझनेमें भूल की है। आप क्षमा करें, कृपापूर्वक जैसे आयी हैं वैसे ही वापस लौट जायें,

मैं आपको नमस्कार करता हूँ, मुझ अपने बालकसे आप ऐसी नरकप्रद वात न कहें !’ इसपर उर्वशी बोली—‘हे सुन्दर ! पुरुषवाके बाद उसी वंशके खर्गमें आनेवाले सभी राजाओंने हम अप्सराओंका भोग किया है, अप्सराओंका भोग ही तो खर्गका सुख है ।’ उर्वशीने अर्जुनका मन अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये नाना प्रकारसे चेष्टा की, परन्तु अर्जुन अटल और अचल रहे । और बोले—

शृणु सत्यं वरारोहे यत्त्वां वद्यास्यनिन्दिते ।

शृणवन्तु मे दिशाश्चैव विदिशश्च लदेवताः ॥

यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानवे ।

तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी ॥

गच्छ मूर्धा प्रपञ्चोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि ।

त्वं हि मे मातृवत्पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत्त्वया ॥

(महा० बन० ४६ । ४५-४७)

‘है देवि ! मैं जो सत्य कहता हूँ सो सुनो, साथ ही सारी दिशाएँ और उनके देवतागण भी सुनें । हे वंशजननी ! आप मेरे लिये कुन्ती, माद्री और शचीमाताके समान पूजनीया हैं, अपना पुत्र समझकर आप माताकी तरह मेरी रक्षा करें, मैं आपके चरणोंमें सिरसे प्रणाम करता हूँ ।’ अर्जुनके इन वचनोंको सुनकर उर्वशीको बहुत क्षोभ हुआ और अर्जुनको यह शाप देकर, ‘तू एक वर्षतक नपुंसक होकर नाचना-गाना सिखाता रहेगा । लोग तुझको पुरुष नहीं बतावेंगे,’ वह चली गयी । अर्जुनने शाप

सहन कर लिया परन्तु अपने ब्रह्मचर्य-व्रतसे वह तनिक भी नहीं डिगे ! अर्जुन-सरीखे देवपूजित वीर युवकके सामने इन्द्र-प्रेरित स्वर्गकी असामान्य सुन्दरी उर्वशी सज-धजकर रातको एकान्तमें उपस्थित हो गिड़गिड़ाकर काम-भिक्षा माँगे, जिसपर उस युवकके मनमें रक्तीभर भी कामका विकार न हो, यह कोई साधारण वात नहीं है। परमहंस रामकृष्ण कहा करते कि ‘सभाओंमें त्यागी सजनेवाले असली त्यागी नहीं हैं, त्यागी वह है जो जनशून्य एकान्त स्थानमें युवती खीको माँ कहकर वहाँसे अदृता निकल जाय।’ अर्जुनका आचरण तो इससे भी ऊँचा है। यही तो भक्तका लक्षण है। खांग धारण करने या मुँहसे लच्छेदार वातें करनेसे ही कोई भक्त नहीं हो जाता, भक्तको अपने मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। भगवान् इतने भोगे नहीं थे कि वे हर किसी राजपुत्रके घोड़े हाँकने या उनके यज्ञमें चाकरी करनेको तैयार हो जाते। अर्जुनके महान् त्याग और सज्जे प्रेमने ही उनको आकर्षित कर लिया था। हा ! कहाँ तो अर्जुन-सदृश त्यागी भक्त, कहाँ आज पर-खी और पर-धन अपहरण करनेके लिये भक्तिका खांग धारण करनेवाले पाखण्डी ! भक्त वनना चाहनेवाले पुरुषको अर्जुनके इस महान् आचरणसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अस्तु ।

अर्जुनके पास दिव्य देवास्त्र थे परन्तु शत्रुओंपर वे उनका सामर्थ्य देखकर मानवी अखोंका ही प्रयोग किया करते। कहा जाता है

कि शंकरके पाशुपत-अस्त्रका उन्होंने महाभारतमें कर्मा प्रयोग नहीं किया । महान् ब्रह्मान् होनेपर भी वे उजड़ नहीं थे । अर्जुनकी भक्ति, सम्यता, गम्भीरता, बुद्धिमत्ता और प्रतिभाने उनके दिग्दिगन्तव्यापी शौर्यके साथ मिलकर सोनमें सुगन्धका काम किया था । अपने गुणोंके कारण ही अर्जुनने दस नाम प्राप्त किये थे । भगवान् श्रीकृष्णपर अटल विश्वास होनेके कारण बड़े-बड़े विकट प्रसंगोंमें भगवान् ने उनको बचाया और हर तरहसे उनका गौरव बढ़ानेकी क्रियाएँ की थीं । कुछ उदाहरण देखिये—

( १ )

द्वारकामें एक ब्राह्मण रहता था । उसके घर पुत्र हुआ और होते ही मर गया । ब्राह्मण मृत पुत्रको लाशको लेकर राजद्वारपर आया और उसे वहाँ रखकर कातरखारसे रोता हुआ कहने लगा—‘ब्राह्मणद्वोही, शठबुद्धि, लोभी, विषयी क्षत्रियाध्म राजाके कर्म-दोषसे ही मेरा बालक मर गया है । क्योंकि—

हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् ।

प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥

( श्रीमद्भा० १० । ८६ । २५ )

‘जब राजा हिंसामें रत, दुश्चरित्र और अजितेन्द्रिय होता है, तभी प्रजाको दरिद्रता और अनेक प्रकारके दुःखोंसे नित्य पीड़ित रहना पड़ता है ।’ यों कहकर लाशको वहीं छोड़ चह ब्राह्मण चला गया । कहना नहीं होगा, ब्राह्मणपर राजद्वोहका मामला

नहीं चलाया गया था । इस प्रकार उस ब्राह्मणके आठ बालक मर गये और वह उनकी लाशोंको राजद्वारपर छोड़ गया । यादवोंने अनेक उपाय भी किये, परन्तु कोई भी उपाय नहीं चला । नवें पुत्रकी लाशको लेकर जिस दिन ब्राह्मण राजसभामें गया, उस दिन वहाँ देवात् अर्जुन आये हुए थे । अर्जुनने कहा—‘देव ! आप क्यों रो रहे हैं, क्या यहाँ कोई भी वीर क्षत्रिय नहीं है जो आप ब्राह्मणोंको पुत्र-शोकसे बचावे । जिन राजाओंके जीवित रहते राज्यमें यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण धन, स्त्री, पुत्र आदिके वियोगमें दुखी रहते हैं, वे राजा नहीं, वे तो पेट पालनेवाले और विषय भोगनेवाले राजवेपी भाँड़ हैं । आपके पुत्रोंकी रक्षा मैं करूँगा और यदि न कर सकूँगा तो स्वयं अग्निमें जल मरूँगा ।’ ब्राह्मणने कहा—‘भगवान् संकर्षण, भगवान् वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नहीं बचा सके, तब तुम क्योंकर बचाओगे ?’ अर्जुनने अभिमानसे कहा—‘मैं संकर्षण, कृष्ण, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध नहीं हूँ । मैं तो श्रीकृष्णका भक्त हूँ, जो काम श्रीकृष्ण नहीं कर सकते, वह मैं उन्होंके बलपर कर सकता हूँ, क्योंकि मेरे लिये उन्हें अपनी मर्यादासे परे भी काम करने पड़ते हैं । मैं गाण्डीव-धनुष-धारी अर्जुन हूँ । मृत्युको भी जीतकर बालकको ले आऊँगा ।’ भगवान् कुछ नहीं बोले, वे मुस्कुरा दिये और मन-ही-मन उन्होंने भविष्यकी लीलाका प्रोग्राम भी निश्चित कर लिया । ब्राह्मणीके बालक-प्रसव-का समय आया । समाचार मिलते ही अर्जुनने हाथ-पैर धो,

गाण्डीव-धनुषको चढ़ाकर दिव्य अल्पोक्ता स्मरण किया और वाणोंसे सूतिका-भवनको हँक दिया। ऐसा पिंजरन्सा बना दिया कि उसके अन्दर किसीका भी ग्रवेश नहीं हो सकता। हरिकी लीला चिचित्र है, ब्राह्मणीके बालक हुआ और बारम्बार रोता हुआ वह उसी क्षण अदृश्य हो गया। ब्राह्मण दुःखित हो श्रीकृष्णके पास जाकर कहने लगा—‘मेरी मूर्खताका भी कोई ठिकाना है, जो मैंने उस कायर अर्जुनकी आत्मप्रशंसापूर्ण बातका विचास कर लिया? मिथ्याकादी और अपने ही मुखसे अपने पराक्रम और धनुषकी झूठी प्रशंसा करनेवाले अर्जुनको विछार है।’ अर्जुन पास ही बैठे थे। अब भी उनमें अहंकार था। वे भगवान्-से कुछ न बोले और तुरन्त अपनी योगविद्यासे यमपुरी गये। वहाँ ब्राह्मणपुत्रको न देखकर इन्द्र, अग्नि, निर्विति, चन्द्र, चायु, वरुण आदि लोकपालोंके लोकोंमें तथा अतल, रसातल और लर्णके ऊपरके सातों लोकोंमें तथा और अनेक स्थानोंमें घूमे, परन्तु कहाँ बालकका पता नहीं लगा, तब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वे चिता बनाकर उसमें जलनेको तैयार हो गये। अब भगवान्-से नहीं रहा गया। उन्होंने जाकर अर्जुनको रोक लिया और कहने लगे—

दर्शये द्विजसूनुस्ते मावशात्मानमात्मना ।  
ये ते हि कीर्ति विमलां मनुष्याः स्थापयन्ति नः ॥

(श्रीमद्भा० १० । ८६ । ४६)

‘मित्र! यों अपनेको अशक्त समझकर अपना अनादर न

करो, (तुमने अभी अपनी पूरी शक्तिका उपयोग ही कहाँ किया है ? मैं तुम्हारा दूसरा रूप—तुम्हारा अन्तरङ्ग सखा तो अभी मौजूद हूँ) चलो, मैं तुम्हें ब्राह्मणके मरे हुए दसों पुत्रोंको दिखलाऊँ। इससे समस्त विश्वमें हमारी कीर्ति छा जायगी।'

अर्जुनका दर्प चूर्ण करना उनके हितके लिये आवश्यक था, सो कर दिया, परन्तु उन्हें मरने कैसे देते ? भगवान्‌ने उनको साथ लिया और दिव्य रथपर सवार हो पश्चिमकी ओर चले। पर्वतोंसे युक्त सातों द्वीप और समुद्रोंको लाँघकर लोकालोक पहाड़के परली तरफ अन्धकारमय प्रदेशमें जा पहुँचे। वहाँ उनके रथके शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक धोड़े भटकने लगे, तब 'महायोगेश्वरेश्वर' भगवान्‌ने अपना सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशमय सुदर्शनचक्र आगे कर दिया। उसके प्रकाशमें रथ आगे बढ़ा। अन्धकारके उस पार पहुँचकर अर्जुनने देखा कि अपार सूर्योंकी-सी महान् ज्योति चारों ओर फैल रही है। उस श्रेष्ठ परम ज्योतिकी ओर अर्जुनकी दृष्टि नहीं ठहर सकी और उन्होंने दोनों आँखें मूँद लीं। इसके बाद वे एक अनन्त जलके समुद्रमें धुसे। वहाँ देखा कि एक अत्यन्त प्रकाशयुक्त मन्दिर है, उसमें अत्यन्त प्रकाशमयी मणियाँ जड़ी हैं और सोनेके हजारों खम्भे हैं। मन्दिरके अन्दर श्वेत-पर्वतके समान अत्यन्त अद्भुत शोषनागजी हैं। उनके मस्तकोंपर स्थित महामणियोंकी प्रभासे प्रकाशित हुए हजार फण फैले हुए हैं। उनके दो हजार नेत्र हैं और गले तथा

जीभोंका वर्ण नीला है। उन शेषजीकी शश्यापर विमु, महानुभाव पुरुषोत्तमोत्तम सुखसे लेट रहे हैं। उनके नव-नील-नीरद शरीरपर पीताम्बर विजलीके सदृश शोभित हो रहा है। उनका सुखमण्डल प्रसन्न तथा अरुण नेत्र कमल-सदृश विशाल और दर्शनीय है। महामणियोंके गुच्छोंसे सुशोभित किरीट-मुकुट और कुण्डलोंकी शोभा छा रही है। भगवान्‌के सुन्दर आठ भुजाएँ हैं और वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है तथा गलेमें कौस्तुभमणि एवं मनोहर वनमाला सुशोभित है। सुनन्द, नन्द आदि पार्षद तथा चक्र आदि आयुध और पुष्टि, श्री, कीर्ति, माया और आठों सिद्धियाँ शरीर धारणकर भगवान्‌की सेवामें तत्पर हैं। श्रीकृष्ण-अर्जुनने वहाँ पहुँचकर सिर झुकाकर आदरसे आत्मरूप अच्युतको प्रणाम किया। तब विमु भगवान्‌ने कहा—‘हे नारायण और नर ! मैंने अपने ही स्वरूप तुम लोगोंको देखनेके लिये इन ब्राह्मणके बालकोंको यहाँ मँगवा लिया था। तुम्हारा कार्य हो गया। अब तुम शीघ्र यहाँ आ जाओ। तुम पूर्णकाम हो, मर्यादा-पालनके लिये लोकसंग्रहार्थ ही धर्मका आचरण करते हो।’ तदनन्तर श्रीकृष्णार्जुन ब्राह्मण-बालकोंको लेकर लौट आये। द्वारकामें पहुँचकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणको उसके सब्र बालक दे दिये। अपने पुत्रोंको पाकर ब्राह्मण अत्यन्त ही प्रसन्न और विस्मित हो गया। इस प्रकार भगवान्‌ने अपने मित्र अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूर्ण की।

( २ )

लक्षागृहमें पाण्डवोंके जलनेका समाचार पाकर भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें हूँढते हुए अन्तमें द्रौपदीके स्थंबरमें पहुँचे । वहाँ जाते ही उन्होंने ब्राह्मण-वेष-धारी अर्जुनको पहचानकर बलराम-जीसे बता दिया । आवश्यक सहायताकर विरोधी राजाओंको परास्त कराया और दरिद्रतासे पूर्ण पाण्डवोंको मित्रताके उपहारके नाते अपार धन देकर उन्हें महाधनी बना दिया । महाभारतकार लिखते हैं—

‘श्रीकृष्णने भेटमें वैदूर्य-मणियोंसे जड़े सोनेके गहने, देशी-विदेशी बहुमूल्य बख्त, उपवस्त्र, शाल-दुशाले, मृगछाला, चट्ठरें, सुन्दर विछौने, अनेक प्रकारके रक्त, नानाप्रकारकी बड़ी-बड़ी चौकियाँ, भाँति-भाँतिके विशाल शामियाने, पालकी आदि सवारियाँ, वैदूर्य-मणियों तथा हीरोंसे जड़े हुए विचित्र वरतन, सुन्दर गहनोंसे सजी हुई रूप-यौवन और चतुरतासम्पन्न दासियाँ, सुशिक्षित सुन्दर हाथी, गहनोंसे लदे हुए वडिया धोड़ोंसे जुते घजावाले सुवर्णरथ, सोनेकी करोड़ों मोहरें और सुवर्णके ढेर-के-ढेर, इस प्रकार अनेक वस्तुएँ प्रदान कीं ।

तदनन्तर राजसूय-यज्ञमें विविध प्रकारसे सहायता कर उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया । इस प्रसंगमें भगवान्‌ने हर तरहकी सेवा की, अतिथियोंके पैर धोये और किसी-किसीके मतमें तो जूँठी पत्तलें उठाकर फेंकनेका काम भी आपने किया । यद्यपि सारा ही

कार्य भगवान्‌की सहायता और व्रतसे सन्पन्न हुआ था, परन्तु अपने मित्र अर्जुनकी प्रसन्नताके लिये दूसरे राजाओंकी भाँति भेटखलरूप भगवान् श्रीकृष्णने भी उधिष्ठिरको चाँदह हजार वडिया हाथी दिये—

वासुदेवोऽपि वाण्णेयो मानं कुर्वन् किरीटिनः ।  
अददाद्वजमुख्यानां सहक्षणि चतुर्दश ॥

( नहा० सन्ना० २२ । ३०-३१ )

( ३ )

चक्रब्यूहमें दीर अभिमन्युको महारथियोंकी सहायतासे जयद्रथने मिलकर मार डाला, तब पाण्डवोंके शिविरमें गहरा शोक छा गया । सुभद्रा और उत्तराका विलाप सुनना सबके लिये असद हो गया । मित्र अर्जुनके अनुरोधसे भगवान् श्रीकृष्ण वहिन सुभद्राको समझाने आये । अनेक प्रकारके उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—

दिष्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।  
क्षाङ्गेण विधिना प्राप्तो वीराभिलपितां गतिम् ॥

जित्वा सुवहुशः शत्रून्प्रेपयित्वा च मृत्यवे ।

गतः पुण्यकृतां लोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयाऽपि च ।

सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्सस्तव पुत्रकः ॥

वीरसूर्वोरपत्नीं त्वं वीरजा वीरवान्धवा ।

मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥

( द्वोणपर्व ७७ । १४—१७ )

ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने ।

लर्वं ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्त्वनः ॥

( द्वोणपर्व ७८ । ४१ )

‘हे वहिन ! तेरा पुत्र धीर, वीर महारथी अपने पिताके समान वलवान् था । उसने तो वीर क्षत्रियोंकी चिरवाञ्छित उत्तम गति प्राप्त की है । वहृत-से शत्रुओंको पराजितकर उन्हें मृत्युके मुँहमें भेजकर सब कामनाओंके पूर्ण करनेवाले पुण्यवानोंके अक्षय पदको प्राप्त किया है । जिस परम गतिको सन्तलोग तप, ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन और ज्ञानके द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं, तेरे पुत्रको वही गति मिली है । हे वहिन ! तू वीरजननी, वीरपत्नी, वीरपुत्री और वीरभगिनी है, पुत्रके लिये शोक न कर, तेरा पुत्र रणमें मरकर दुर्लभ परम गतिको प्राप्त हुआ है । मैं तो चाहता हूँ कि हमारे कुलमें जितने पुरुप हैं, सभी यशस्वी अभिमन्युकी-सी शुभ गतिको प्राप्त हों ।’ तू निश्चय रख, अर्जुन कल जयद्रथको जखर मार डालेगा । भगवान् यों समझाकर चले गये ।

सुभद्रा बोली—‘कालकी गति वड़ी ही विचित्र है । जिसके ऊपर श्रीकृष्ण सहायक थे, वही अभिमन्यु आज अनाथकी भाँति मारा गया । परन्तु हे पुत्र ! तुझे वही गति मिले जो यज्ञ करनेवाले,

दानी, ज्ञानी ब्राह्मण, ब्रह्मचर्यका आचरण करनेवाले, पुण्य तीर्थोंमें  
खान करनेवाले, उपकार माननेवाले, उदार, गुरुसेवक, हजारोंकी  
दक्षिणा देनेवाले, संग्रामसे न मुड़कर बीर शत्रुओंको मारकर  
मरनेवाले, सहस्रों गौओंका दान करनेवाले, सामानसहित घर दान  
करनेवाले, ब्राह्मणों और शरणागतोंको धनकी निधि दे देनेवाले,  
सर्वत्यागी, संन्यासी, व्रतधारी मुनि, पतित्रता खियाँ, सदाचारी  
राजा, चारों आश्रमोंके नियमोंको पालनेवाले, दीनोंपर दया  
करनेवाले, समान भाग बाँटनेवाले, चुगली न करनेवाले, धर्मशील,  
अतिथिको निराश न लौटानेवाले, आपत्ति और सङ्कटके समय  
धैर्य रखनेवाले, माता-पिताके सेवक, अपनी ही लीसे प्रेम करने-  
वाले, परखीसे बचे रहनेवाले, अपनी लीसे भी ऋतुकालमें ही  
समागम करनेवाले, मत्सरता न करनेवाले, क्षमाशील, दूसरोंको  
चुभनेवाली वात न कहनेवाले, मद्य, मांस, मद, झूठ, दम्भ और  
अहंकारसे दूर रहनेवाले, दूसरोंका किसी भाँति भी अनिष्ट न  
करनेवाले, पाप-कार्य करनेमें लज्जित होनेवाले, शालज्ज और  
परमात्मज्ञानमें ही तृप्त रहनेवाले जितेन्द्रिय साधुओंको मिलती  
है।' धन्य माता !

X            X            X            X

अर्जुनने भगवान्‌के बलपर जयद्रथको मारनेका प्रण करते  
हुए कहा कि—‘जयद्रथ यदि मेरी या महाराज शुधिष्ठिरकी और  
भगवान् पुरुषोत्तमकी शरण न आया तो कल सूर्यास्तसे पूर्व मैं

उसे मार डाल्दँगा । यदि ऐसा न करूँ तो मुझे वीर तथा पुण्यात्माओंको ग्रास होनेवाले लोक न मिले । साथ ही मातृ-हत्यारे, पितृ-हत्यारे, गुरु-खी-गामी, चुगलखोर, साधु-निन्दा और पर-निन्दा करनेवाले, धरोहर हड्प जानेवाले, विश्वासघाती, भुक्तपूर्वा खीको स्वीकार करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, गोहत्यारे—इन पापियोंकी गति मुझे मिले; वेदाध्ययनकारी तथा पवित्र व्रतधारी पुरुषोंका अपमान करनेवाले, वृद्ध, साधु और गुरुका तिरस्कार करनेवाले, ब्राह्मण, गौ और अग्निको पैरसे छूनेवाले, जलमें थूकने और मलमूत्र त्याग करनेवाले, नङ्गे नहानेवाले, अतिथिको निराश लौटानेवाले घूसखोर, झूठ बोलनेवाले, ठग, दम्भी, दूसरोंपर दोष लगानेवाले, नौकर, खी, पुत्र और आश्रितको न देकर अकेले ही मीठा खानेवाले, अपने हितकारी आश्रित साधुका पालन न करनेवाले, उपकारीकी निन्दा करनेवाले, निर्दयी, शराबखोर, मर्यादा तोड़नेवाले, कृतन्न, भरण-पोषणकारीकी निन्दा करनेवाले, बायें हाथसे गोदमें रखकर खानेवाले, धर्मत्यागी, उषाकालमें सोनेवाले, जाड़ेसे डरकर स्नान न करनेवाले, रणसे डरकर भागनेवाले क्षत्रिय, वेदध्वनिसे रहित और एक कुएँके ग्राममें छः मासतक रहनेवाले, शाल्की निन्दा करनेवाले, दिनमें मैथुन करनेवाले, दिनमें सोनेवाले, मकानमें आग लगानेवाले, विष देनेवाले, अग्नि तथा अतिथिसे रहित, गौको जल पीनेसे रोकनेवाले, रजस्वलासे मैथुन करनेवाले, कन्या बेचनेवाले और दान देनेकी प्रतिज्ञा करके

लोभवश न देनेवाले आदि लोगोंको जिन नरकोंकी प्राप्ति होती है, वही मुझे भी मिले।<sup>५</sup> इसके सिवा मैं यह भी प्रण करता हूँ कि यदि जयद्रथको मारे बिना ही कल सूर्य अस्त हो जायगा तो मैं जलती हुई अग्निमें कूदकर जल भरूँगा।' अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुनकर भगवान्‌ने अपना पाञ्चजन्य शस्त्र बजाया। भगवान्‌के श्रीमुखकी वायुसे भरे शहूकी धनि प्रलयकालके समान हुई, जिससे आकाश, पाताल, सभी दिशाएँ काँप गयीं।

×            ×            ×            ×

भगवान्‌ने एकान्तमें अर्जुनसे कहा कि 'भाई ! मैंने गुसचर भेजकर कौरवोंके यहाँसे सब समाचार मँगवा लिये हैं, तुम्हारी प्रतिज्ञा सुनकर पहले तो जयद्रथ आदि सभी घबरा गये थे, परन्तु अब तो उन्होंने निश्चय कर लिया है कि आचार्य द्रोणसहित छहों महारथी जयद्रथकी रक्षा करेंगे, उन छहोंको जीते बिना जयद्रथको पाना कठिन होगा, परन्तु तुमने मेरी सम्मति लिये बिना ही ऐसी विकट प्रतिज्ञा कैसे कर ली ?' दृढ़निश्चयी अर्जुनने उत्तरमें कहा— 'भगवन् ! मुझे महारथियोंकी कोई चिन्ता नहीं है। मैं सबको जीत सकूँगा'—

<sup>५</sup> सुभद्रा और अर्जुनके प्रसङ्गवश पुण्यात्मा और पापियोंके बर्णनको व्यानपूर्वक पढ़कर सुभद्रा-कथित सत्कर्मोंका अद्वेष और अर्जुन-कथित पाप-कर्मोंका स्थाग करनेके लिये सभीको पूरी चेष्टा करनी चाहिये।

तब प्रसादाद्वगवन् किं नावासं रणे मम ।

( द्वौषिष्ठ ७६ । २१ )

‘हे भगवन् ! आपकी कृपासे मुझे रणमें कौन-सी वस्तु अप्राप्त है ?’ स्वयं जयद्रथने भी दुर्योधनसे ऐसी ही बात कही—

वासुदेवसहायस्य गाण्डोवन्धुन्वतो धनुः ।

कोऽर्जुनस्याग्रतस्तिष्टेत्साक्षादपि शतक्रतुः ॥

( द्वौषिष्ठ ७५ । २० )

‘वासुदेव श्रीकृष्णकी सहायताप्राप्त गाण्डीवधारी अर्जुनके सामने दूसरेकी तो बात ही क्या है, साक्षात् इन्द्र भी नहीं ठहर सकता !’

बात भी यही थी । भगवान्‌के कारण ही पाण्डव विजयी हुए । वे सारी वार्ते पहलेसे ही सोच रखते थे । कहाँ कैसे, क्या करनेसे अर्जुनकी और उसके प्रण, प्राण तथा प्रतिष्ठाकी रक्षा होगी, इस बातकी दूरदर्शितापूर्ण जितनी चिन्ता श्रीकृष्णको रहती थी, उतनी चिन्ता अर्जुनको नहीं थी और होती भी क्यों ? जब वह अपने रथकी लगाम उन्हें सौंप चुका और उनके द्वारा ‘मा शुचः’ का आश्वासन पा चुका तो फिर उसकी चिन्ता भी बही करते ।

दूसरे दिन घोर युद्ध हुआ । वीरोंको मारते और सेनाके समुद्र-को चीरकर छः महारथी वीरोंसे रक्षित सवके वीचमें स्थित जयद्रथके पास पहुँचनेमें बहुत समय लग गया । भगवान्‌ने कहा—

‘भाई अर्जुन ! इन सबको जीतकर सन्ध्यासे पूर्व जयद्रथको मारना बड़ा कठिन है। देख, मैं दूसरा ही उपाय रचता हूँ।’  
इतना कहकर—

योगी योगेन्द्र संगुन्तो योगिनामीश्वरो हरिः ।  
लुष्टे तमसि छण्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥

(महा० द्वौण० १४६ । ५८)

योगयुक्त योगेश्वर भगवान् श्रीहरिने सूर्यको दृक्कर्तेके लिये घोर अन्धकारको उत्पन्न किया। उस अन्धकारके फैलते हीं सूर्य अस्त-सा हों गया। सूर्यलि हुआ देवतार कौशल-पद्मीय लेग हर्षसे भर गये। जयद्रथ समीप आकर हर्षसे आकाशकी ओर ताकने लगा। भगवान् ने कहा—‘अर्जुन ! वह, यही अवसर है, जयद्रथका मस्तक अपने तीक्ष्ण वाणसे काटकर अपनी प्रतिशा सफल कर !’ अर्जुनने वाण सन्धान किया। जयद्रथ और उसके संरक्षकोंकी बुद्धि चकरा गयी। अर्जुनने अपनी वाणधारा और समीको ज्ञान करा दिया। इतनेमें भगवान् ने अन्धकारको दूर कर दिया। सूर्य अस्ताचलकी ओर जाते हुए दिन्वायी दिये। भगवान् ने कहा—‘अर्जुन ! अब जल्दी कर, परन्तु ऋचरदार, जयद्रथका मस्तक जमीनपर न गिरने पावे। इसको पिताजा वरदान है कि जो कोई इसके सिरको काटकर जमीनपर गिरवेगा, उसके सिरके सौ टुकड़े हो जायेंगे।

घरण्यां मम पुत्रस्य पात्रिष्यति यः शिरः ।

तस्यापि शतधा मूर्ढा फलिष्यति न संशयः ॥

(द्वौणपर्व १४६ । ११२ )

इसलिये तू अपने दिव्य वाणोंसे इसके सिरको काटकर वाणोंके द्वारा ऊपर-का-ऊपर उड़ाकर इसका बूढ़ा वाप जहाँ वैठा सन्ध्या-बन्दन कर रहा है, उसकी गोदमें डाल दे।' अर्जुनने वैसा ही किया। जयद्रथका मर्त्यक काटकर अर्जुनने उसे दिव्य वाणोंद्वारा आकाश-मार्गसे प्रेरितकर उसके पिताकी गोदमें गिरा दिया, पिता झिझककर उठा तो उसके द्वारा वह सिर सहसा जमीनपर गिर पड़ा, जिससे उसी समय उसके सिरके सौ टुकड़े हो गये। भगवान्‌की दूरदर्शिता और सावधानीसे अर्जुनकी दोनों विपत्तियोंसे अद्भुत प्राणरक्षा हो गयी।

( ४ )

इन्द्रसे वरदानमें प्राप्त एक अमोघ शक्ति कर्णके पास थी। इन्द्रका कहा हुआ था कि इस शक्तिको तू प्राणसंकटमें पड़कर एक बार जिसपर भी छोड़ेगा, उसीकी मृत्यु हो जायगी, परन्तु एक बारसे अधिक इसका प्रयोग नहीं हो सकेगा। कर्णने वह शक्ति अर्जुनको मारनेके लिये रख छोड़ी थी। उससे रोज दुर्योधनादि कहते कि तुम उस शक्तिका प्रयोगकर अर्जुनको मार क्यों नहीं देते। वह कहता कि आज अर्जुनके सामने आते ही उसे जखर मार्खँगा, पर रणमें अर्जुनके सामने आनेपर कर्ण इस बातको मूल जाता और उसका प्रयोग न करता। कारण यही था कि अर्जुनके रथमें सारथिके रूपमें भगवान् निरन्तर रहते। अर्जुनका रथ सामने आते ही कर्णको पहले भगवान्‌के दर्शन होते। भगवान्

उसे मोहित कर लेते, जिससे वह शक्ति छोड़ना भूल जाता । वे हर तरहसे अर्जुनको बचाने और जितानेके लिये सचेष्ट थे । उन्होंने ख्यां ही सात्यकिसे कहा था—

अहमेव तु राध्रेयं मोहयामि युधांशुर ।  
ततो नायासृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवादने ॥  
न पिता न च मे माता न यूर्यं भ्रातरस्तथा ।  
न च प्राणास्तथा रक्षा यथा चीमत्सुराहवे ॥  
श्रैलोक्यराज्याद्यतिक्ञिद्वयेदन्यत्सुदुर्लभम् ।  
नेच्छेयं सात्वताहं तद्विना पार्श्वं धनञ्जयम् ॥

( द्वौणपर्व १८२ । ४०, ४३-४४ )

‘हे सात्यकि ! मैंने ही कर्णको मोहित कर रखा था, जिससे वह श्वेत घोड़ोवाले अर्जुनको इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे नहीं मार सका था । मैं अपने माता-पिताकी, तुमलोगोंकी, भाइयोंकी और अपने प्राणोंकी रक्षा करना भी उतना आवश्यक नहीं समझता, जितना रणमें अर्जुनकी रक्षा करना समझता हूँ । हे सात्यकि ! तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा भी कोई वस्तु अधिक दुर्लभ हो तो मैं उसे अर्जुनको छोड़कर नहीं चाहता ।’ धन्य है ।

इसीलिये भगवान्नने भीमपुत्र घटोत्कचको रातके समय युद्धार्थ भेजा । घटोत्कचने अपनी राक्षसी मायासे कौरव-सेनाका संहार करते-करते कर्णके नाकोंदम कर दिया । दुर्योधन आदि सभी घबरा गये । सभीने खिल मनसे कर्णको पुकारकर कहा कि ‘इस

आधीरातके समय यह राक्षस हम सबको मार ही डालेगा, फिर भीम-अर्जुन हमारा क्या करेंगे । अतएव तुम इन्द्रकी शक्तिका प्रयोगकर इसे पहले मारो, जिससे हम सबके प्राण बचें ।' आखिर कर्णको वह शक्ति घटोत्कचपर छोड़नी पड़ी । शक्ति लगते ही घटोत्कच मर गया । वीर-पुत्र घटोत्कचकी मृत्यु देखकर सभी पाण्डवोंकी आँखोंमें आँसू भर आये । परन्तु श्रीकृष्णको बड़ी प्रसन्नता हुई, वे हर्षसे प्रमत्त-से होकर बार-बार अर्जुनको हृदयसे लगाने लगे । अर्जुनने कहा—‘मगवन् ! यह क्या रहस्य है ? हम सबका तो धीरज छूटा जा रहा है और आप हँस रहे हैं ?’ तब श्रीकृष्णने सारा भेद बताकर कहा कि ‘मित्र । इन्द्रने तेरे हितके लिये कर्णसे कवच-कुण्डल ले लिये थे, वदलेमें उसे एक शक्ति दी थी, वह शक्ति कर्णने तेरे मारनेके लिये रख छोड़ी थी । उस शक्तिके कर्णके पास रहते मैं सदा तुझे मरा ही समझता था । मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आज भी, शक्ति न रहनेपर भी कर्णको तेरे सिवा दूसरा कोई नहीं मार सकता । वह ब्राह्मणोंका भक्त, सत्यवादी, तपस्वी, व्रताचारी और शत्रुओंपर भी दया करनेवाला है । मैंने घटोत्कचको इसी उद्देश्यसे भेजा था । हे अर्जुन ! तेरे हितके लिये ही मैं यह सब किया करता हूँ । चेदिराज, शिशुपाल, भील एकालव्य, जरासन्ध आदिको विविध कौशलोंसे मैंने इसीलिये मारा या मरवाया था, जिससे वे महाभारत-समरमें कौरवोंका पक्ष

न ले सकें । वे आज जीवित होते तो तेरी विजय बहुत ही कठिन होती । फिर यह घटोत्कच तो ग्रामगोंका द्वेषी, यज्ञद्वेषी, धर्मका लोप करनेवाला और पापी था । इसे तो मैं ही मार डालता, परन्तु तुम लोगोंको बुरा लगेगा, इसी आशङ्कासे मैंने नहीं नारा । आज मैंने ही इसका नाश करवाया है—

ये हि धर्मस्य लोपारो वध्यास्ते मम पाण्डव ॥  
धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञेषा मया छृता ।  
ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो हीः श्रीधृतिः क्षमा ॥  
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शरे ।

( द्वैषणपर्व १८१ । २८, २९, ३० )

‘जो पुरुष धर्मका नाश करता है, मैं उसका वंश कर डालता हूँ । धर्मकी स्थापना करनेके लिये ही मैंने यह प्रतिज्ञा की है । मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि जहाँ ब्रह्मभाव, सत्य, इन्द्रिय-दमन, शौच, धर्म, ( बुरे कर्मोंमें ) लज्जा, श्री, धैर्य और क्षमा हैं, वहाँ मैं नित्य निवास करता हूँ ।’

अभिप्राय यह कि तुम्हारे अन्दर ये सब गुण हैं, इसीलिये मैं तुम्हारे साथ हूँ और इसीलिये मैंने कौरबोंका पक्ष त्यान रखा है, नहीं तो मेरे लिये सभी एक-से हैं । फिर तुम घटोत्कचके लिये शोक क्यों करते हो ? अपना भाई भी हो तो क्या हुआ, जो पापी है वह सर्वथा त्याज्य है !

इस प्रकार मित्र अर्जुनके ग्राण और धर्मकी भगवान्‌ने रक्षा की !

( ५ )

जयद्रथ-घधके दिन अर्जुनके रथके घोड़ोंको बहुत ही परिश्रम करना पड़ा । घोड़े घायल हो गये । प्यासके मारे उनके प्राण घबरा उठे । जयद्रथ अभी बहुत दूर था, इससे यह निश्चय हुआ कि घोड़े खोल दिये जायें । भगवान्‌ने घोड़े खोल दिये । अर्जुन रथसे उतरकर गाण्डीव-धनुषको तानकर पर्वतके समान अचल हो खड़े हो गये । अर्जुनने तुरन्त ही वाणोंसे पृथिवी फोड़कर वहाँ एक सुन्दर सरोवर तैयार कर दिया । वहाँ अर्जुनने वाणोंसे ही खम्भे और सुन्दर भवन तथा परकोटा बना दिया । भगवान् घोड़ोंके वाण निकालकर उन्हें अच्छी तरह धोने, नहलाने और पानी पिलाने लगे । जब घोड़े नहाकर, पानी पीकर और घास खाकर ताजे हो गये, तब श्रीकृष्णने प्रसन्न हो उन्हें रथमें जोड़ दिया । इस तरह भगवान्‌ने मित्रकी किसी प्रकारकी सेवा करनेमें भी आनाकानी नहीं की ।

( ६ )

कर्ण और अर्जुनका घमासान युद्ध हो रहा है । कर्ण और शत्यकी बातें सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा कि यदि कर्ण मुझे मार डाले तो आप क्या करेंगे ? भगवान्‌ने हँसकर अर्जुनसे कहा—

पतेद्विषाकरः स्थानाच्छुप्येदपि महोदधिः ।

शैत्यमग्निरियाश्च त्वां कर्णो हन्याद्वन्द्वज्जय ॥

यदि चैतत्कथञ्चित्स्याल्पोकपर्यासनं भवेत् ।

हन्यां कर्णं तथा शल्यं वाहुभ्यामैष संयुगे ॥

( कर्णपर्यास ० । १०५-१०६ )

‘चाहे सूर्य टूटकर गिर पड़े, समुद्र तूख जाय, अग्नि शीतल हो जाय, परन्तु कर्ण तुझे नहीं मार सकता और यदि किसी प्रकार ऐसा हो हीं जाय तो संसार उलट जायगा और मैं अपने वाहुओंसे कर्ण और शल्यको मार डाढ़ूँगा ।’

कर्णने अर्जुनको मारनेके लिये एक सर्पमुख वाण बहुत दिनों-से सँभालकर रख छोड़ा था । वह वाण महा भयानक, अति तीक्ष्ण, जलता हुआ तथा वड़ा ही प्रभावशाली था । कर्णके उस वाणको चढ़ाते हीं दिशाओंमें और आकाशमें आग-सी लग गयी । सैकड़ों तरे दिनहींमें टूट-टूटकर गिरने लगे । इन्द्रसहित लोकपालगण हाहाकार करने लगे । खण्डव-वन-दाहके समयका अर्जुनका वैरी अश्वसेन नामक एक महाविपधर सर्प भी वैर निकालनेके लिये उसी वाणमें घुस चैठा । कर्णने अर्जुनके मस्तकको ताककर बड़ी ही फुर्तीसे वाण छोड़ दिया । परन्तु भगवान्‌ने उससे भी अधिक फुर्तीसे वाणके अर्जुनके रथतक पहुँचनेके पहले ही अर्जुनके बड़े वजनदार रथको एकदम पैरसे दबाकर पृथिवीमें खँसा दिया । घारों घोड़े घुटने टेककर जमीनपर चैठ गये । वाण आया, परन्तु अर्जुनके मस्तकमें नहीं लग सका । कर्णने बड़े उत्साह और उद्योगसे अव्यर्थ सर्पवाण भारा था, परन्तु रथ नीचा हो जानेसे वह व्यर्थ हो

गया । बाण इन्द्रके दिये हुए अर्जुनके दिव्य मुकुटमें लगा, जिससे वह मुकुट पृथिवीपर गिरकर जल गया । भगवान्‌ने अर्जुनको सचेत करके उड़ते हुए अश्वसेन नागको भी मरवा डाला । यों बड़े भारी मृत्युप्रसंगमें अर्जुनकी रक्षा हुई ।

( ७ )

महाभारतमें पाण्डव विजयी हुए । छावनीके पास पहुँचनेपर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि 'हे भरतश्रेष्ठ ! तू अपने गण्डीव-बनुष और दोनों अक्षय भाथोंको लेकर पहले रथसे नीचे उतर जा । मैं पीछे उतरूँगा, इसीमें तेरा कल्याण है ।' यह आज नयी बात थी, परन्तु अर्जुन भगवान्‌के आज्ञानुसार नीचे उतर गये । तब बुद्धिके आधार जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण घोड़ोंकी लगाम छोड़कर रथसे उतरे । उनके उतरते ही रथकी ध्वजापर बैठा हुआ दिव्य वानर तत्काल अन्तर्धान हो गया । तदनन्तर अर्जुन-का वह विशाल रथ पहिये, धुरी, डोरी और घोड़ोंसमेत बिना ही अग्निके जलने लगा और देखते-ही-देखते भस्म हो गया । इस घटनाको देखकर सभी चकित हो गये । अर्जुनने हाथ जोड़कर इसका कारण पूछा, तब भगवान् बोले—

अख्यैर्बहुविधैर्दग्धः पूर्वमेवायमर्जुन ।

मदधिष्ठितत्वात् समरे न विशीर्णः परन्तप ॥

इदानीन्तु विशीर्णोऽयं दग्धो ब्रह्माख्यतेजसा ।

मया विमुक्तः कौन्तेय त्वय्यद्य कृतकर्मणि ॥

( शस्यपर्व ६२ । १८-१९ )

‘हे परन्तप अर्जुन ! विविध शब्दाखोंसे यह रथ तो पहले ही जल चुका था, मैं इसपर बैठा इसे रोके हुए था, इसीसे यह अबसे पूर्व रणमें भस्म नहीं हो सका । हे कौन्तेय ! तेरा कार्य सफल करके मैंने इसे होड़ दिया, इसीसे ब्रह्माखके तेजसे जल हुआ यह रथ इस समय खाक हो गया है । मैं पहले न रोके रखता था आज तू पहले न उत्तरता तो तू भी उद्धकर खाक हो जाता ।’

भगवान्‌की इस लीलाको देख-सुनकर सभी पाण्डव आनन्द-से गद्गद हो गये ।

महाभारतमें तथा अन्य पुराणोंमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे अर्जुनके साथ भगवान्‌की अपूर्व मैत्रीका परिचय मिलता है । यहाँ तो संक्षेपमें बहुत ही धोड़े-से उदाहरण दिये गये हैं । इस लीलाका आनन्द लेनेको इच्छा रखनेवालोंको उपर्युक्त ग्रन्थ अवश्य पढ़नेसुनने चाहिये ।

जिस समय उत्तराके गर्भस्थ बालक परीक्षितको अद्वत्थामाने भार दिया था और उत्तरा भगवान्‌के सामने रोने लगी थी, उस समय विशुद्धात्मा भगवान्‌ने सारे जगत्को सुनाते हुए कहा था—

न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या सत्यमेतद्विष्यति ।

एष सज्जीवयाम्येनं पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥

नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन ।

न च शुद्धात्परावृत्तस्तथा सज्जीवतामयम् ॥

यथा मे दयितो धर्मो ब्राह्मणश्च विशेषतः ।  
अभिमन्योः सुतो जातो सूतो जीवत्वयं तथा ॥  
यथाऽहं नाभिजानामि विज्ञयेन कदाचन ।  
विरोधन्तेन सत्येन सूतो जीवत्वयं शिशुः ॥  
यथा सत्यं च धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।  
तथा सूतः शिशुरुद्यं जीवतादभिमन्युजः ॥  
यथा कंसश्च केशो च धर्मेण निहतौ मया ।  
तेन सत्येन बालोऽयं पुनः सञ्जीवतामयम् ॥

( अश्वसेषपर्वं ६३ । १८—२३ )

‘हे उत्तरा ! मैं कभी झूठ नहीं बोलता, मेरा कहना सत्य ही होगा । सब देहधारी देखें मैं अभी इस बालकको जीवित करता हूँ । यदि मैंने कभी हँसी-मज़ाकमें भी झूठ नहीं बोला है, और यदि मैं युद्धमें कभी पीछे नहीं लौटा हूँ तो यह बालक जी उठे । मुझे यदि धर्म और विशेषकर ब्राह्मण प्यारे हैं तो जन्मते ही मरा हुआ अभिमन्युका बालक जीवित हो जाय । यदि कभी भी मैंने जानमें अर्जुनसे विरोध नहीं किया है, यदि यह सत्य है तो यह सूत बालक जी उठे । सत्य और धर्म मेरे अन्दर नित्य ही प्रतिष्ठित रहते हैं, इनके बलसे यह अभिमन्युका मरा बालक जीवित हो जाय । यदि कंस और केशीको मैंने धर्मानुसार मारा है ( द्वेषसे नहीं ) तो यह बालक जी उठे ।’ भंगवान्‌के ऐसा कहते ही बालक जी उठा ।

इस प्रसङ्गमें भगवान्‌के सत्य, वीरत्व, धर्म, ब्रह्मण्यता, राग-द्वैपहीनता आदिकों घोषणा तो महत्वकी हैं ही, परन्तु अर्जुनके अविरोधकी वात भगवान्‌का अर्जुनके प्रति कितना असीम प्रेम था, इसको सूचित करती है।

इसी प्रकार भक्त लुभन्वाको मारनेकी प्रतिज्ञा कर लेनेपर भगवान्‌ने अर्जुनको वचाया था और उनके प्रणकी रक्षा की थी।

गृहस्थमें रहकर भी अर्जुन इन्द्रियोंपर विजयी होनेके कारण शास्त्रीय रूतिसे ब्रह्मचारी ही थे। ब्रह्मचर्य, सत्य और सदाचारके कारण हो इनमें ब्रह्माख लौटानेकी शक्ति थी। अश्वत्यामाके ब्रह्माखको व्यर्य करनेके लिये अर्जुनके द्वारा ब्रह्माखका प्रयोग होनेपर जब दोनों अस्तोके बीचमें भिड़ जानेसे जगत्में प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया तब दिव्य ऋषियोंने प्रकट होकर अर्जुनसे ब्रह्माख लौटानेके लिये अनुरोध किया। तब जगत्की हितकामना-से तुरन्त ब्रह्माख लौटा लेनेपर अर्जुनके लिये महर्षि वेदव्यासने कहा कि, 'तीनों लोकोंमें एक भी ऐसा पुरुष नहीं है जो इस अखका उपसंहार कर सके, त्वयं इन्द्र भी नहीं कर सकते। चरित्रहीन पुरुष तो इस अखका प्रयोग ही नहीं कर सकते। ब्रह्मचारी भी उपसंहार नहीं कर सकते। अर्जुन ब्रह्मचारी, सत्यव्रती, शूरवीर और गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला है, इसीसे यह ऐसा कर सका है।'

अर्जुनमें जो एक-से-एक बढ़कर अनेक गुण थे उसका मुख्य कारण यही है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे और भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे इतना अधिक स्नेह करते थे कि हर तरह अर्जुनकी बात पूरी हो इस बातके लिये पूर्ण प्रयत्न करते थे। वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनमें पूर्ण अभिन्नता थी और उनमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं था, इस बातको उनके विपक्षियोंने भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। कौरवोंके राजा स्वयं दुर्योधनने महाराज धृतराष्ट्रके सामने पाण्डवोंके राजसूय-यज्ञका वर्णन करते हुए कहा था कि—

आत्मा हि कृष्णः पार्थस्य कृष्णस्यात्मा धनञ्जयः ॥

यद्व्यादर्जुनः कृष्णं सर्वं कुर्यादसंशयम् ।

कृष्णो धनञ्जयस्यार्थं स्वर्गलोकमपि त्यजेत् ॥

तथैव पार्थः कृष्णार्थं प्राणानपि परित्यजेत् ।

(महा० सभा० ४२। ३१—३३)

अर्थात् 'श्रीकृष्ण अर्जुनके आत्मा हैं और अर्जुन श्रीकृष्णके आत्मा हैं। अर्जुन श्रीकृष्णको जो कुछ करनेको कहते हैं, श्रीकृष्ण निस्सन्देह वही सब करते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुनके लिये दिव्यलोकका भी त्याग कर सकते हैं और वैसे ही अर्जुन श्रीकृष्णके लिये प्राणोंका भी परित्याग कर सकते हैं।'

भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनमें कैसा अभिन्न और सच्चा प्रेम था और भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको किस आदरकी दृष्टिसे देखते थे इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

पाण्डवोंके यहाँसे लौटकर आये हुए सज्जयसे शृतराष्ट्रने जब वहाँके समाचार पूछे, तब सारा हाल कहते हुए उसने कहा कि 'श्रीकृष्ण-अर्जुनका मैंने विलक्षण प्रेमभाव देखा है। मैं उन दोनोंसे बातें करनेके लिये बड़े ही विनीत भावसे उनके अन्तःपुरमें गया। मैंने जाकर देखा कि वे दोनों महात्मा उत्तम वल्लभपूजोंसे भूपित होकर रक्षजटित सोनेके महामूल्य आसनोंपर बैठे थे। अर्जुनकी गोदमें श्रीकृष्णके पैर थे और द्रौपदी तथा सत्यभामाकी गोदमें अर्जुनके दोनों पैर थे। अर्जुनने अपने पैरके नीचेका स्वर्णका पीढ़ा सरकाकर मुझे बैठनेको कहा, मैं उसे छूकर अद्वके साथ नीचे बैठ गया। तब श्रीकृष्णने अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए और उन्हें अपने ही समान बतलाते हुए मुझसे कहा—

देवासुरमनुष्येषु                            यक्षगन्धर्वभौगिषु ।  
 न तं पश्याम्यहं युद्धे पाण्डवं योऽभ्ययाद्वणे ॥  
 घलं वीर्यञ्च तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता ।  
 अविपादञ्च धैर्यञ्च पार्थज्ञान्यन् विद्यते ॥  
 (महा० उद्यो० ५९ । २६, २९ )

'देवता, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, मनुष्य और नागोंमें कोई ऐसा नहीं है जो युद्धमें अर्जुनका सामना कर सके। घल, वीर्य, तेज, शीघ्रता, लघुहस्तता, विषादहीनता और धैर्य ये सारे गुण अर्जुनके सिवा किसी भी दूसरे मनुष्यमें एक साथ विद्यमान नहीं हैं।'

भगवान् ने अर्जुनके साथ सदा सख्यत्वका व्यवहार किया और उन्हें अपनी लीलाओंमें प्रायः साथ रखा। भगवान् के परम

धाम पधारनेपर अर्जुन प्राणहीन-से हो गये और शीघ्र ही हिमालयमें जाकर उन्होंने शरीर छोड़ दिया । भगवान्‌के प्रति अर्जुनका इतना गाढ़ प्रेम था कि वे गीताज्ञानके सर्वोच्चम और सर्वप्रथम श्रोता तथा ज्ञाता होनेपर भी सायुज्य-सुक्तिको न ग्रहणकर परम धाममें भी भगवान्‌की सेवामें ही लगे रहे । खर्गरोहणके अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने दिव्य देह धारणकर परम धाममें देखा—

ददर्श तत्र गोविन्दं ब्राह्मणं वपुषाऽन्वितम् ।

×                    ×                    ×

दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्थितम् ।

चक्रप्रभृतिभिर्घोरैर्दिव्यैः पुरुषविग्रहैः ॥

उपास्यमानं वीरेण फालगुनेन सुवर्चसा ।

×                    ×                    ×

( महाभारत स्वर्गा० ४ । २-४ )

भगवान् श्रीगोविन्द अपने ब्राह्मशरीरयुक्त हैं । उनका शरीर देदीप्यमान है, उनके समीप चक्र आदि दिव्य और घोर अस्त्र पुरुषका शरीर धारणकर उनकी सेवा कर रहे हैं । महान् तेजस्वी वीर अर्जुन भी भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं ।

हम सबको चाहिये कि संसारके भोग्य पदार्थोंसे आसक्ति दूरकर अर्जुनकी भाँति भगवान्‌के शरणागत हो जायँ ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय ।

# विप्र सुदामा

—३०५७—



हान् दरिद्री सुदामा पठिडत भगवान् श्री-  
कृष्णचन्द्रके लङ्कपनके सखा थे । दोनों  
एक ही गुरुके घरमें एक साथ पढ़े थे ।  
सुदामा वेदके तत्त्वज्ञ, विषयोंसे विरक्त,  
शान्त और जितेन्द्रिय थे । भगवान् श्री-  
कृष्णसे इनकी खूब पटती थी । दोनोंके  
साथ ही दीनवन्धुकी यथार्थ मित्रता हुआ  
करती है । इसीमें तो उनके इस नामकी सार्थकता है । विद्या  
पढ़ लेनेपर दोनों मित्र अपने-अपने घर चले गये । बहुत दिन  
बीत गये, आपसमें कभी भेट नहीं हुई । भगवान् श्रीकृष्ण तो  
द्वारकाके राजराजेश्वर बने, और उधर बैचारे सुदामा एक दूटी-  
फूटी झोंपड़ीके निवासी हुए । सुदामाजी खयं जैसे सज्जन थे वैसे  
ही उन्हें सती ली भी मिल गयी थी । दरिद्रता तो उनके घरमें  
साक्षात् मूर्तिमान् होकर रहती थी । परन्तु दम्पति हरिमजन  
करते हुए सन्तोषसे अपना शुद्ध जीवन बिताते थे । धनका लोभ  
तो था ही नहीं, आवश्यक सामग्रियोंके लिये भी वे किसीसे कुछ  
माँगते नहीं थे ।

# भक्त-चरित माला



सुदामाका चरण-प्रक्षालन



यदृच्छ्योपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ।  
तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुतक्षामा च तथाविधा ॥

( श्रीमद्भा० १० । ८० । ७ )

प्रारब्धवश जो कुछ आप ही मिल जाता था उसीमें निर्वाह करते । दरिद्रताके कारण सुदामाजी एक बहुत मैले-कुचैले कपड़े-का चिथड़ा पहने रहते और उनकी पतिव्रता स्त्री भी उन्हींके समान एक चिथड़ेसे अपना काम चलाती । नित्य भोजन न मिलनेके कारण पतिकी भाँति स्त्री भी उन्हींके साथ-साथ भूखका अपार कष्ट सहती । परन्तु पतिसे वह कभी कुछ कहती नहीं थी । पति-पत्नीका खभाव और उनकी भक्ति देखिये—

नित पूजा जप ज्ञान ध्यानमें रहत सुदामा ।  
सेवत चरन पुनीत प्रेमते नित्य सुवामा ॥  
मिले कवहिं फल मूल खाहिं अमृत करि जानहिं ।  
रह उछिष्ट सो वाम राम जूठो करि मानहिं ॥  
यहि प्रकार बीते दिवस जो दरिद्र तो उग्र मन ।  
यथा लाभ सन्तोष सुख रमत राम रमनीरमन ॥  
ज्यों-ज्यों दुख नित प्रवल प्रीति त्यों-त्यों द्विज हरिपद ।  
मथत छीर नौनीत घिरत पावक जम्बूनद ॥  
रामवधू सिववधू कन्तकी पतिव्रत धारन ।  
कन्त-चरनकी धूर सीस सिन्दूर संवारन ॥

यदपि सही संसार सुख असन वसन विनु दीनता ।

तौ मन घच क्रम रामके चरन-कमल लौलीनता ॥

(हलधर कवि)

दग्धपति इस प्रकार अपना सात्त्विक जीवन विताते । लुटामा समय-समयपर अपनी सती पत्नीको अपने वाल्यकालकी कथा सुनाया करते और गुरुगृहकी बात चलनेपर भगवान् श्रीकृष्णकी स्मृति होते ही वे प्रेममें मन हो जाते । प्रिय सखाकी स्मृतिसे उनके रोमाञ्च हो जाता, औँखें डबडबा आतीं, वाणी गद्गद हो जाती और बड़ी कठिनतासे वे रोते-रोते अपने मित्रकी मनोहर लीलाएँ सुनाते । पत्नी भी उन्हें सुनकर मुग्ध हो जाती ।

एक समय ऐसा हुआ कि कई दिनोंतक लगातार अन नहीं मिला । भूखके मारे बेचारी ब्राह्मणीका सुख सूख गया, बच्चोंकी दशा देखकर उसकी छाती भर आयी । उसने मनमें सोचा कि जगत्के एकमात्र निधि, सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी खान भगवान् जिसके मित्र हैं, उसके बाल-बच्चे यों भूखके मारे प्राण दे दें, यह बात तो ठीक नहीं है । उसने अपने हृदयका भाव पतिसे कहना चाहा, परन्तु साहस नहीं हुआ । थोड़ी देरके लिये वह रुक गयी, बच्चे फिर खानेको माँगने लगे । मातृस्नेह उमड़ा, दरिद्रपीड़िता, दुःखिता सती ब्राह्मणीसे अब नहीं रहा गया । वह डरसे काँपती-काँपती पतिके समीप जाकर विनयके साथ बोली—

‘ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षात् श्रियः पतिः ।

‘ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्पभः ॥

तसुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् ।

दास्यति द्विषिं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥

आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।

स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥

किं त्वर्थकामान् भजतो नात्यभीष्टान् जगद्गुरुः ।

(श्रीमद्भा० १० । ८० । ९—१२)

अर्थात् 'हे महाभाग ! मैं जानती हूँ कि साक्षात् लक्ष्मीपति ब्राह्मणोंके हितकारी, शरणागतपालक, यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र आपके मित्र हैं, वे साधुओंकी परम गति हैं । आप उनके निकट जाइये, आप कुटुम्बी हैं, दरिद्रताके कारण कष्ट पा रहे हैं, वे आपको अवश्य ही प्रचुर धन देंगे । वे भोज, वृष्णि और अन्वकोंके खासी इस समय श्रीद्वारकाजीमें विराजते हैं । हे प्रभो ! वे जगद्गुरु अपने चरणकमलोंका स्मरण करनेवालेको जब अपना स्वरूपतक दे देनेमें भी सङ्कोच नहीं करते तब अपने परम भक्त आपको उनसे धन मिलनेमें तो सन्देह ही क्या है ? प्रभो ! मैं जानती हूँ कि आपको धनकी रत्तीभर भी चाह नहीं है परन्तु धन बिना गृहस्थीका निर्वाह होना बड़ा कठिन है, अतएव मेरी समझसे आपका अपने प्रिय मित्रके पास जाना ही आवश्यक और उचित है ।'

सुदामाने सोचा कि ब्राह्मणी दुःखोंसे घबराकर धनके लिये मुझे वहाँ भेजना चाहती है । उन्हें इस कार्यके लिये मित्रके घर

जानेमें वडा सङ्कोच हुआ । वे कहने लो 'पगली ! क्या तू धनके  
लिये मुझे वहाँ भेजती है ? क्या श्रावण कभी धनकी इच्छा किया  
करते हैं ? अपना तो काम भगवान्‌का भजन ही करना है ।  
भूख लगनेपर भिक्षा माँग ही सकते हैं ।'

मेरे हिये हरिको पद्मपंकज बार हजारलो देस्त परिच्छा ।

औरनको धन चाहिये वाधरी श्रावणके धन केवल भिच्छा ॥

( नरोत्तम रघु )

श्रावणीने कहा, 'यह तो ठीक है, परन्तु यहाँ भीख भी तो  
नसीब नहीं होती । मेरे फटे चिंचडे और भूखसे छृपटाते हुए  
बालकोंके मुँहकी ओर तो देखिये । मुझे धन नहीं चाहिये । मैं  
नहीं कहती कि आप उनके पास जाकर राज्य या लक्ष्मी माँगो ।  
अपनी इस दीन दशामें एक बार वहाँ जाकर आप उनसे मिल तो  
आइये ।' सुदामाने जानेमें बहुत आनाकानी की, परन्तु अन्तमें यह  
विचारकर कि चलो इसी बहाने--

अथं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ।

—श्रीकृष्णचन्द्रके दुर्लभ दर्शनका परम लाभ होगा, सुदामाने  
जानेका निश्चय कर लिया, परन्तु खाली हाथों कैसे जायँ ?  
उन्होंने स्त्रीसे कहा कि—

अप्यस्त्युपायनं किञ्चिद्गृहे कल्याणि दीयताम् ।

'हे कल्याणि ! यदि कुछ भेट देनेयोग्य सामंग्री घरमें हो  
तो लाओ ।' पतिकी बात तो ठीक थी परन्तु वह बेचारी क्या

देती ? सुदामाको तो श्रीकृष्णप्रेमकी मस्तीमें कई दिनोंकी भूखका भी पता नहीं था, परन्तु ब्राह्मणीको तो अपनी फाकाकशीका हाल रक्ती-रक्ती माल्हम था । दंरिद्रोंके घरोंमें हीरेकी कनीके अभावके समान सुदामाके दूटे छप्परकी फूटी हँडियोंमें अनकी कनी भी तो नहीं थी । ब्राह्मणी चुप हो गयी । परन्तु आखिर यह सोचकर कि कुछ दिये बिना सुदामा जायेंगे नहीं, वह बड़े सङ्कोचसे पड़ोसिनके पास गयी । आशा तो नहीं थी परन्तु पड़ोसिनने दया करके चार सुट्टी चावल उसे दे दिये । ब्राह्मणीने उनको—

चैलखण्डेन तान्वदूध्वा भर्वे प्रादादुपायनम् ॥

—एक मैले-कुचले फटे चिथड़ेमें बाँधकर श्रीकृष्णकी भैंटके लिये पतिको दे दिया और बड़े उल्लासके साथ वह बोली—

सिद्धि करौ गनपति सुमिरि बाँधि दुपटिया खूट ।

चले जाहु तेहि मारगहि माँगत बाली खूट ॥

( नरोत्तम कवि )

सुदामाने ‘अच्छा’ कहकर चावलोंकी पुटकिया बगलमें दबाली और द्वारकाकी तरफ प्रयाण किया । बहुत दिनोंके बाद प्रिय मित्रके, मिलनसे होनेवाले आनन्दकी सुन्दर-सुन्दर कल्पना करते हुए निष्काम भक्त सुदामा द्वारकाजी पहुँचे । सुदामाजी तो द्वारकाका ठाट-बाट देखकर ही चकित हो गये ।

दृष्टि चकाचौंध गयी देखत सुवरनमई,

एकते एक सरस द्वारकाके भौन हैं ।

पूछे विनु कोऊ काहूसों न करै बात जहाँ—  
 देवता-से वैठे सब साधि-साधि मौन हैं ॥

देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय,  
 कृपाकरि कहो कहाँ कीन्हे विष्र गाँन हैं ।

धीरज अधीरके हरन पर पीरके,  
 धताओ धलवीरके महल यहाँ कौन हैं ? ॥

( नरोत्तम कवि )

यह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णका महल भी नहीं जानता,  
 इस बातसे आश्चर्यचकित होकर किसी नागरिकाने सुदामाजीको  
 महाराजका महल दूरसे दिखला दिया । सुदामाजी महलके पहले  
 द्वारपर पहुँचे । द्वारपालने भर्तक नवाकर कुशल-समाचार पूछनेके  
 बाद कहा कि 'हे द्विजराज ! आप महानुभाव कौन हैं और  
 किससे मिलनेकी इच्छासे यहाँ पधारे हैं ?' सुदामाने कहा—

हैं भिखारि संसार दीन दुर्बल दुर्दस हैं ।  
 उनछ कर्मको करनिहार दारिद्रके बस हैं ॥

विष्र सुदामा नाम कृष्ण हैं मित्र दूमारे ।  
 मित्र-मिलन हैं द्वारपाल ! आयहुँ हरिद्वारे ॥

अब इतनी विनती सुनहु अहो पवरि ! तुम चतुर नर ।  
 कहो जाय गोपालते खड़े सुदामा द्वारपर ॥

( हलघर कवि )

सुदामाके मुखसे भगवान्‌के लिये 'मित्र' शब्द सुनकर द्वार-

पालकी बुद्धि चकरा गयी, उसने सोचा कि कहाँ ब्राह्मण पागल  
तो नहाँ हो गया, अरे—

देवराजको दर्प नाहिं जो मित्र कहावैँ ।

व्यासदेवसे विष्णुरूप जैहिं सीस नवावैँ ॥

(हलधर)

ऐसे सर्वेश्वर भगवान्‌को नज्जा-भूखा ब्राह्मण अपना सखा  
कैसे कहता है ? परन्तु द्वारपाल तो भगवान्‌का ही था । उसने  
सोचा कि मेरे प्रभु दीनबन्धु हैं न ? दीनका मित्र बनना उनके  
लिये सामाविक ही है । परन्तु राजनियमके अनुसार ब्राह्मणको  
आदरसहित वहाँ बैठकर द्वारपाल अन्दर गया ।

द्वारपाल तहैं चलि गयो, जहाँ कृष्ण यदुराय ।

हाथ जोरि ठाढ़ो भयो, खोल्यो सीस नवाय ॥

(नरोत्तम कवि)

जाकर बोला, नाथ !

सीस पगा न भगा तनपे प्रभु ! जानेको आहि थसे किहि गामा ।  
धोती फटी सी लटी दुपटी, अरु पाँय उपानहकी नहिं सामा ॥  
द्वार खड़ो द्विज दुर्वल देखि, रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा ।  
पूछत दीनदयालको धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥

(नरोत्तम)

भगवान् ‘सुदामा’ शब्द सुनते ही सारी सुध-बुध भूल गये—

सुनत सुदामा नाम नाथ सुभ घटी गुनी है ।

बहुत दिनपर आजु मित्र-आगमन सुनी है ॥

कर थीरी कर्पूर पान करते डारी है।  
 रही न सुधि पट-पीत पानढी पगु छारी है॥  
 रही लटपटी पाग सिर सोउ न सके बनाएके।  
 तजि भूपन येसेहि चले मिले सुदामा धाइके॥

(हलधर)

सुकुट वहीं रह गया, पीताम्बर कहीं गिर गया, पादुका भी  
 नहीं पहन पाये और ढोड़े द्वारपर ! जाते हीं सुदामाके चरणोंपर  
 गिर पड़े ।

सजल नैन शोपाल मित्रके पार्थ गहे हैं ।  
 अंकमालिका देन घुरि उर लाह रहे हैं॥  
 दोउ मित्रके नेत्र नीर ढरकन लाने हैं ।  
 द्वारावतिके लोग ईखि धीरज त्यागे हैं॥  
 ज्यों जादव समुझावते, महाराज धीरज धरैं ।  
 त्यों अधीर होते अधिक, खिलखि खिलखि अंकन भरैं॥

(हलधर)

लोचन पूरि रहे जलसों प्रभु, दूरते देखत ही दुख मेट्यो ।  
 सोच भयो सुरनायकके, कलपद्रुमके हिय माँझ खबेट्यो॥  
 काँपि कुवेर हिये सरसे, पगजात सुमेरहु रंकसे सेट्यो ।  
 राज भयो तब ही जबही भरि, अंक रमापतिसों द्विज भेट्यो॥

आज भक्त और भगवान्‌का प्रिय सखाके रूपमें मधुर मिलन  
 हो रहा है । कृष्ण, सुदामा दोनोंके नेत्रोंकी मिली हुई आँसुओंकी

धारा गङ्गा, गोदावरीसे अधिक कल्याणकारी होकर जगत्को पावन कर रही है। महाराजकी सहस्रों रानियाँ और द्वारकावासी नरनारी ब्रह्मणके सौभाग्यकी सराहना कर रहे हैं। देवता चकित और सुग्रह होकर लीलामयकी प्रेमलीला देख रहे हैं। देवराज इन्द्र, कल्पवृक्ष, कुबेर और सुमेरु घबरा रहे हैं कि भगवान् कहीं हमारा सर्वस्तु सुदामाको न दे डालें। ऋषि, मुनि और भक्तगण भक्तवत्सल भगवान्‌की मिलनरीतिको देख-देखकर प्रमुदित हो रहे हैं। भगवान्‌ने सुदामाके विवाहसे फटे हुए चरणोंको देखकर रोते हुए कहा—

ऐसे विहाल विवाहस्तों, पग कंटकजाल गड़े पुलि जोये।  
हाय ! महादुख पाये सखा तुम, आये इतै न कितै दिन खोये ॥  
देखि सुदामाकी दीन दसा, करुना करके करुनानिधि रोये ।  
पानी परातको हाथ छुयो नहिं, नैननके जलस्तों पग धोये ॥

परातका पानी छूनेकी भी आवश्यकता नहीं हुई। सरकारने अपने आँसुओंकी धारासे ही सुदामाके पद पखार डाले और उन्हें छातीसे लिपटा लिया। बहुत देर हो गयी, भगवान् सुदामाको छातीसे अलग नहीं करते। चारोंओर असंख्य लोगोंकी भीड़ लग गयी। अन्तमें उद्धव और अक्रूरादिने आकर भगवान्‌से प्रार्थना की। तब भगवान् सुदामाजीके गलबाहीं डाले हुए उन्हें अन्तःपुरमें ले गये।

जिन महलोंमें बिना आङ्गा वृष्णि और अन्धकवंशी यादव भी नहीं जा सकते, उन महलोंमेंसे एक सर्वाङ्गसुन्दर दिव्य महलमें

सुदामाजी पहुँचे । भगवान् अच्युतने प्रिय बन्धु सुदामाको आदर-  
सहित ले जाकर अपने दिव्य पलङ्गपर बैठाया और पूजनको  
सामग्री स्वयं अपने हाथोंसे संग्रहकर अपने ही हाथोंसे उनके  
चरणोंको धोकर, उस जलको स्वयं त्रिलोकपावन होते हुए भी  
अपने मख्तकपर धारण किया । रुक्मिणीजीने कहा कि मैं भी चरण  
पखालूँगी । भगवान् ने कहा, ठीक तो है, सब रानियाँ पखारें  
और इनके चरणोदकको महलोंमें छिड़ककर और पानकर स्थान  
और मनको पवित्र करें । रुक्मिणीजी एक हाथमें तर्णकी झारी  
लेकर दूसरे हाथसे चरण धोने लगी ।

दहिन कमलकर लिये कनक भासी हरिदामा ।

थाम कमलन्करते पखारती चरन सुदामा ॥

जासु चरनरज धरत ध्यान मुनि जनम गँवाये ।

जाकी गति नहिं सिव विरचि पन्नपति पाये ॥

जेहि सुर लदा पुकारते, जगदम्बा जगतारनी ।

तिन्हें आजु सुर देखते, भिज्जुकचरन पखारनी ॥

इसके बाद और सब रानियोंने भी ऐसा ही किया । स्वयं  
लक्ष्मीपति जिसके चरणोंका चरणामृत लें, उसका चरण यदि  
लक्ष्मीजी या उनकी सखियाँ धोती हैं तो इसमें आश्चर्यकी बात  
ही कौन-सी है ?

भगवान् ने अपने प्रिय मित्रके शरीरमें दिव्य गन्धयुक्त चन्दन,  
अगरु, कुञ्जम लगाया और सुगन्धित धूप, दीप इत्यादिसे पूजन

करके उन्हें दिव्य भोजन कराया, पान-सुपारी दी। ब्राह्मण सुदामा का शरीर अत्यन्त मलीन और क्षीण था। देहभरमें स्थान-स्थान पर नसें निकली हुई थीं। वह एक फटा-पुराना कपड़ा पहने हुए थे।

परन्तु भगवान्‌के प्रिय सखा होनेके कारण साक्षात् लक्ष्मीका अवंतार रुक्मणी अपनी सखी देवियोंसहित रत्नदण्डयुक्त व्यजन-चामर हाथोंमें लिये परम दरिद्र भिक्षुक ब्राह्मणकी बड़े चावसे सेवा-पूजा करने लगीं। भगवान् श्रीकृष्ण सुदामा का हाथ अपने हाथमें लेकर लड़कपनकी मनोहर बातें करने लगे। बाल्यकालकी एक गुरुसेवा और गुरुत्वेहकी सुन्दर कथा भगवान्‌ने सुदामा को याद दिलायी। सुदामा भगवान्‌की वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हें धनकी कामना तो पहले ही रक्तीभर भी नहीं थी परन्तु उनके मनमें यदि कहीं छिपी हुई किसी सूक्ष्म कामनाकी कोई कल्पना भी की जा सकती थी तो वह भी अब नष्ट हो गयी। सुदामा बोले—

किमसाभिरतिर्वृत्तं देवदेव ! जगद्गुरो !!

भवता सत्यकामेन येपां वासो गुरावभूत्॥

यस्यच्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विमो।

श्रेयसां तस्य गुरुपु वासोऽत्यन्तविडम्बनम्॥

(श्रीमद्भा० १० । ८० । ४४-४५)।

‘हे देवदेव ! हे जगद्गुरो !! आप सत्यसङ्कल्प हैं, सौभाग्य-वश गुरुकुलमें मैं आपका सङ्ग पाकर कृतार्थ हो गया। हे नाथ !

आपकी कृपासे मुझको कोई भी कामना नहीं है, सब फल प्राप्त हैं। हे प्रभो ! सम्पूर्ण मङ्गलोंकी उत्पत्तिका स्थान वेदमय ब्रह्म आपकी मूर्ति है। खामिन् ! आपका गुरुके यहाँ रहकर विद्या पढ़ना अत्यन्त विडम्बना या लोकाचारमात्र है।'

भगवान्‌ने प्रिय मित्रकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए हँस-कर कहा कि 'भाई ! तुम मेरेलिये कुछ भेट भी लाये हो ? भक्तोंकी प्रेमपूर्वक दी हुई जरा-सी वस्तुको भी मैं बहुत मानता हूँ, क्योंकि मैं प्रेमका भूखा हूँ। अभक्तके द्वारा दी हुई अपार सामग्री भी मुझे सन्तुष्ट नहीं कर सकती।'

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपद्धतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥\*

( श्रीमद्भा० १० । ८ । ४ )

'जो भक्त पत्र, पुष्प, फल और जल आदि मुझे प्रेमसे अर्पण करता है उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पदार्थ मैं प्रेमसहित खाता हूँ।'

भगवान्‌के इतना कहनेपर भी खुदामा चावलोंकी पुटकी भगवान्‌को नहीं दे सके !

तंकुल तिय दीन्हें हुते, आगे धरियो जाय ।

देखि राजसम्पति बिभव, दे नहिं सकत लजाय ॥

( नरोत्तम )

\* श्रीमद्भगवद्गीताके नवम अध्यायका २६ वाँ श्लोक भी यही है।

भगवान्‌की अतुल राजसम्पत्ति और वैभव देखकर सुदामा-  
को चावल देनेमें वड़ी लज्जा हुई । भगवान्‌ हरि सब जानते थे,  
उन्होंने फिर प्रेमसे कहा—

कहु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न दैत ।  
चाँपि गाँठरी काँखमें, रहे कहो किहि हेत ॥

(नरोत्तम)

सुदामाने सिर झुका लिया और चावलोंकी पुटकी नहीं  
दी, तब—

सर्वभूतमद्वक्साक्षात्स्यागमनकारणम् ।  
विश्वायाच्चिन्तयश्चायं श्रीकामो माभजत्पुरा ॥  
पत्त्व्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ।  
प्राप्तो मामस्य दास्यामि सम्पदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥

(श्रीमद्भा १० । ८१ । ६-७ )

‘सब प्राणियोंके अन्तरकी बात जाननेवाले हरिने अपने  
निकट ब्राह्मणके आनेका कारण समझकर विचार किया कि यह  
मेरा निष्काम भक्त और प्रिय सखा है । इसने धनकी कामनासे  
पहले कभी मेरा भजन नहीं किया और न अभी इसे किसी तरह-  
की कामना है, इसीलिये यह चावलोंकी भेट देना नहीं चाहता ।  
परन्तु यह अपनी पतिव्रता पक्षीकी प्रार्थनासे मेरे पास आ गया  
है, अतएव इसे मैं वह ( भोग और मोक्षरूप ) सम्पत्ति दूँगा जो  
देवताओंको भी दुर्लभ है ।’

यों विचारकर भगवान्‌ने 'यह क्या है ?' कहकर जल्दीसे सुदामाकी बगलमें दबी हुई वह चावलोंकी पुटकी जबरदस्ती खींच ली—

जीरन पट फट छुटि परे, विखरि गये तेहि ठौर ।

पुराना फटा कपड़ा था, पुटकी खुल गयी और चावल चारों ओर विखर गये। भगवान् वडे प्रेमसे उन्हें बठोरकर कहने लगे—

नन्देतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे !

तर्पयन्त्यङ्गं मां विश्वमैते पृथुकतण्डुलाः ॥

( श्रीमद्भा० १० । द१ । ९ )

हे सखे ! यही तो मुझको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाली प्यारी भेटकी सामग्री है। ये चावल मुझको और ( मेरे साथ ही ) समरुद्ध विश्वको तृप्त कर देने। यों कहकर एक सुड़ी चावल चवा गये और उसके दिव्य स्वादकी सराहना करने लगे।

तुरन्त ही दूसरी सुड़ी भरी। इतनेहीमें पास बैठी हुई हरिचरणकमलोंकी नित्यकिङ्करी, अनन्याश्रया लक्ष्मीखपिणी जग-जननी श्रीरुक्मिणीने परब्रह्म भगवान् यदुनन्दनका तुरन्त हाथ पकड़ लिया।

काँपि उठी कमला मन सोचति मौखिं कहा हरिको मन आँको।  
ऋद्धि कैपी नव निद्धि कैपी सब सिद्धि कैपी ब्रह्मनायक धोंको॥  
सोक भयो सुरनायकके जब दूसरि बार लयो भरि भाँको।  
मेरु डरै बकसै जिन मौहिं कुवेर चबावतं चामर चौंको॥

हूल हियरामें कान काननपरी है टेर,

भेटत सुदामैं स्थाम बनैं न अधातहीं ।

कहे नरोत्तम ऋद्धि सिद्धिनमें सोरभयो,

ठाढ़ी थरहरे और सोचे कमला तहीं ॥

नागलोक लोक सब ओक ओक थोक थोक,

ठाढ़े थरहरे मुखसे न कहैं वातहीं ।

हालो परथो लोकनमें लालो परथो चक्रिनमें,

चालो परथो लोगनमें चाँचर चवातहीं ।

( नरोत्तम )

श्रीरुक्मिणीजीने कहा—

एतावतालं विश्वात्मन् सर्वसम्पत्समृद्धये ।

अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुण्डिन्पुंसस्त्वत्तोपकारणम् ॥

( श्रीमद्भा० १० । ८१ । ११ )

‘हे विश्वरूप ! बस कीजिये । आपकी इतनी प्रसन्नता ही मनुष्योंकी सबसे ऊँची श्रीचृद्धिके लिये यथेष्ट है । मेरी कृपासे मिलनेवाली इस लोक और परलोककी आपकी रची हुई सब प्रकारकी सम्पत्ति अथवा ऐश्वर्य इस ब्राह्मणको इस एक मुङ्गी चावलसे ही मिल गया । अब और चावल चबाकर क्या आप मुङ्गको भी दे डालता चाहते हैं ?’

माता लक्ष्मी ! धैर्य रखिये । भगवान् आपको नहीं देते । वे तो स्वयं अपने आपको देते हैं जो किसीके रोकनेपर रुकते

नहीं । वास्तवमें भक्तोंको आपसे काम ही क्या है । वे तो आपके स्वामीके उपासक हैं । आप उनकी सेवा करनेके लिये साथ रहें तो आपकी सर्जी । अस्तु, भगवान् मुझी छोड़कर मुसकराने लगे । तदनन्तर वे बोले । भक्तमालरचयिता महाराज श्रीरघुराजसिंहजी कहते हैं—

ऐसे सुनि प्यारी बचन, यदुनन्दन मुसकाइ ।  
 मन्द मन्द बोले बचन, आनंद उर न समाइ ॥  
 ब्रजमें यशोदा मैथा मन्दिरमें माखन औ,  
 मिथ्री मही मोहन त्यों मोदक मलाई है ।  
 खायो मैं अनेक बार तैसे मधुरामें आइ,  
 व्यंजन अनेक मोहि जननी जैघाई है ॥  
 तैसे द्वारिकामें यदुवंशिनके गेह गेह,  
 सहित सनेह पायो भोजनमें लाई है ।  
 रघुराज आजलों चिलोकहूमें मीत ऐसी—  
 राउरके चाउरते पाई ना मिठाई है ॥

खायो अनेकन यागन भागन मेवा रमा कर बागन दीठे ।  
 देवसमाजके साधुसमाजके लेत निषेदन नाहि उबीठे ॥  
 मीत जु साँची कहौ रघुराज इते कस बै भये स्वादते सीठे ।  
 पायो नहीं कतहूँ अस मैं जस राउर चाउर लागत मीठे ॥  
 सुदामाजी कुछ समयतक वहाँ ठहरे । भगवान् ने अपनाँ  
 पटरानियोंसहित उनकी बड़ी सेवा की ।

नित नित सब द्वारा बती प्रभु दिखलायी आप ।

भरे बाग अनुराग सब जहाँ न व्यापहिं ताप ॥

परमकृपा दिन दिन करी कृपानाथ यदुराय ।

मिश्रभावना विस्तरी दूनो आदर भाय ॥

( नरोत्तम )

श्रीकृष्णमिलनका अतुल सुख सम्भोगकर सुदामाजी भगवान्-की आज्ञा लेकर घरको चले । विश्वपिता, आनन्दमय परमात्मा श्रीकृष्ण वहुत दूरतक सुदामाके साथ-साथ गये और प्रणाम तथा विनीत प्रार्थना-भरे वचनोंसे प्रसन्न करके प्रिय मित्रिको बिदा किया । श्रीकृष्णमहाराजने उन्हें कुछ भी धन नहीं दिया और न सुदामाने उनसे कुछ माँगा ही । यह बात नहीं कि उनके मनमें माँगनेकी तो कामना रही हो परन्तु लज्जासे या 'विना माँगे अधिक मिल जायगा' 'भगवान् सब जानते हैं, मैं क्या कहूँ, ये आप ही दे देंगे' इस भावसे न माँगा हो । वास्तवमें उनके मनमें कामनाका कहीं लेश भी नहीं था । वे तो श्रीकृष्णका दर्शन पाकर परम आनन्दको प्राप्त हो गये । लोके कहनेपर धनकी इच्छासे जो उन्हें आना पड़ा या उन्हें अपनी इसी कृपणतापर बड़ी लज्जा हो रही थी । सुदामा मन-ही-मन विचारते हुए चले जा रहे हैं—

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ।

यद्यरिद्रितमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो विभ्रतोरसि ॥

काहं दरिद्रः पापीयान् कृष्णः श्रीनिकेतनः ।

ब्रह्मवन्धुरितिः स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥

निवासितः प्रियाजुषे पर्यन्ते न्रातरो यथा ।  
 महिष्या धीजितः श्रान्तो वालव्यजनहस्तया ॥  
 शुश्रूपया परमया पादसंयाहनादिभिः ।  
 पूजितो देवदेवेन विग्रदेवेन देयवत् ॥  
 स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।  
 सर्वासामपि सिद्धीनां भूलं तच्चरणाच्चनम् ॥  
 अधनोऽयं धनं प्राप्य भाद्रम्भुवैर्न मां स्मरेत् ।  
 इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात् ॥

( श्रीमद्भा० १० । ८९ । १५-२० )

अर्थात् 'अहो ! मैंने ब्रह्मण्यदेव भगवान्‌की ब्रह्मण्यता भली-  
 भाँति देखी । देखो उनके वक्षःस्थलमें साक्षात् लक्ष्मी निवास करती  
 हैं, तथापि उन्होंने मुझ महादरिद्रिको गलेसे लगा लिया । कहाँ मैं  
 नीच दरिद्र और कहाँ लक्ष्मीनिवास भगवान् श्रीकृष्ण ! तथापि  
 उन्होंने मुझे ब्राह्मण समझकर गलेसे लगा लिया और जैसे बड़े  
 भाईका आदर किया जाता है उसी तरह अपनी प्रियाके पलंगपर  
 मुझे बैठाया और मेरी रास्तेकी यकावट दूर करनेके लिये साक्षात्  
 लक्ष्मीजीका अवतार श्रीरुक्मिणीजी मुझपर चैंकर डुलाने लगीं ।  
 जैसे इष्टदेवका भक्तिपूर्वक पूजन किया जाता है वैसे ही श्रीहरिने  
 अपने हाथोंसे मेरा पूजन किया, मेरे पैर दबाये और मेरी परम  
 सेवा की । ( यही तो भक्तोंकी विशेषता है । भगवान्‌को तो सब  
 पूजते हैं परन्तु उन्हें स्वयं अपने हाथों सामग्री इकट्ठीकर भक्तोंकी

पूजा करनी पड़ती है। ) सुदामा मन-ही-मन कहते हैं, उन श्रीहरि के चरणोंकी सेवा, मनुष्योंको स्वर्ग, मोक्ष, इस लोककी महान् सम्पत्ति और सब प्रकारको सिद्धियोंको देनेवाली है। तथापि परम कृपालु भगवान् ने यह विचारकर सुझे धन नहीं दिया कि 'यह निर्धन ब्राह्मण धन पानेसे अत्यन्त गर्वित होकर मेरा स्मरण नहीं करेगा।'

यही तो भक्तकी भावना है, जो धन न मिलनेपर भगवान्-को कोसते हैं वे तो धनके भक्त हैं। भगवान् को तो उन लोगोंने धनका साधन ब्रनाना चाहा है। जगत्के मनुष्यों ! देखो, देखो ! एक बार सुदामाके हृदयकी ओर आँख उठाकर और अपने हृदयका परदा हटाकर ! घरमें अनेका दाना नहीं है, पहननेको पाँच हाथ कपड़ा नहीं है, रहनेको धास-फसकी झोंपड़ी नहीं है, वज्जे दाने-दानेके लिये तरस रहे हैं, स्त्रीको कई दिनोंकी भूखी छोड़कर आये हैं ! दरिद्रताने मानो प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होकर सारे परिवार-को ढक रखा है, इतनेपर भी माँगनेकी इच्छा नहीं है ! पतिव्रता स्त्रीके वचनोंसे आना पड़ा परन्तु माँगना बन नहीं पड़ा। भावना ही नहीं रही, यह नहीं सोचा कि घरमें वच्चोंकी क्या दशा होगी, स्त्रीको जाकर क्या कहूँगा । राजराजेश्वर परम प्रेमी मित्रके यहाँसे जाकर उस सती स्त्रीको क्या उत्तर दूँगा, जिसके अपने और वच्चों-के पेट भूखके मारे सिकुड़ गये हैं और जिसके बदन ढाँपनेको

पूरा एक कपड़ा भी नहीं है। मामूली वात नहीं है, बड़े-बड़े वीर ऐसी अवस्थामें ध्वराकर कर्तव्य-पथसे विचलित हो जाते हैं। परन्तु धन्य है सुदामा, जो आज धन न पानेमें परमात्माकी कृपाका दर्शन कर रहे हैं। यही तो पद-पदपर भगवत्कृपा अनुभव करनेका तरीका है। किसी भी अवस्थामें मन मैला नहीं, कहींपर असन्तोष नहीं, उसके प्रत्येक दान और उसके प्रत्येक विधानपर पूरा सन्तोष ! यही तो निर्भरता है। ऐसे भक्तके धरवारकी सारी सँभालका भार भगवान् अपने ऊपर खयं ले लेते हैं। सुदामाको तो कामना नहीं थी, वे तो निःस्पृह थे परन्तु उनकी ली और वच्चे भूखे मरते हैं, इस वातको अब भगवान् कैसे सह सकते हैं ? भगवान्ने निष्काम सुदामाकी सती लीके मनमें एक बार उठी हुई कामनाको भी पूरा करना अपना कर्तव्य समझा। भगवान्के दर्शन अमोघ हैं ! उससे सांसारिक कामना भी (उनके उचित समझनेपर) पूरी होती है और भगवच्चरणारविन्द-की प्राप्ति तो होती ही है। ध्रुव और विभीषण कामनाको लेकर भगवान्के सम्मुख हुए थे। दर्शन होते ही कामनाका नाश हो गया परन्तु भगवान्ने उनकी पहलेकी कामना भी पूरी की और अन्तमें उन्हें अपना दुर्लभ परम पद भी दिया। यही भगवान्की विशेषता है। परन्तु कामना लेकर भगवत्चरणारविन्दमें उपस्थित होना है वड़ी ही ओछी बात ! इस परम रहस्यको जो समझ

लेते हैं उनके अन्तःकरणमें तो किसी भी अवस्थामें कामना उत्पन्न नहीं होती ! सुदामाके मनमें कामना नहीं थी । परन्तु उनकी पत्नीके मनमें एक बार कामना उदय हुई थी, इसीसे अद्भुतकर्मा भगवान्‌ने तुरन्त विश्वकर्माको भेजकर सुदामाकी दूटी झोपड़ी रातोंरात देवदुर्लभ दैवीविलास नगरके रूपमें परिणत करवा दी । सुदामा अपने गाँवके समीप पहुँचकर देखते हैं कि वहाँ उनकी झोपड़ीका कहीं पता नहीं है । जहाँ झोपड़ी थी वहाँ आज सूर्य, अग्नि और चन्द्रमाके समान तेजयुक्त बड़े ऊँचे-ऊँचे महल बने हुए हैं । उनके आसपास ब्राग-ब्रगीचे लो हैं, अनेक पक्षी नाना प्रकारके कछौल करते हुए अपने मधुर गानसे मनुष्योंके मन मोहित कर रहे हैं । अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहे हैं, महलोंमें विविध भाँतिके दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सज्जित अनेक लो और पुरुष इधर-उधर घूम रहे हैं । सुदामाजी तो यह देखकर दंग रह गये । उन्होंने सोचा मेरी दूटी मँढ़ैया कहाँ गयी ? ऐसा सम्पन्न महल कैसे बन गया ? क्या मैं खप देख रहा हूँ, क्या मैं पराये नगरमें आ घुसा ?

जगर मगर ज्योति छाय रही चहुँदिसि ,  
 अगर बगर हाथी घोड़नको सोर है ।  
 चौपड़को बन्धो है बजार पुनि सोननके ,  
 महल ठुकानकी कतार चहुँ ओर है ॥

भीड़भाड़ धकापेल चहुँदिसि देखियत ,  
 द्वारकाते दूनों यहाँ प्यादनको जोर है ।  
 रहिवेको ठाम है न काहूसों पिछान मेरी ,  
 यिन जाने यसे कोऊ हाड़ मेरे तोर है ।

सुदामाजी अपने घरकी एक-एक चीजोंको याद करके सोचने  
 लगे कि यहाँ तो उनमेंसे कोई भी चीज नहीं दीखती ।

फूटी एक थारी बिनु टौंटनीकी भारी हुती ,  
 चाँसकी पिटारी औं पथारी हुती टाटकी ।  
 बैटे बिनु छुरी औं कमण्डलु ही टोकवो हो ,  
 दूटो हुतो पोषो पाटी दूटी हुती खाटकी ॥  
 पथरौटा काठको कठौता कहूँ दीसै नाहिं ,  
 पीतरको लोटो ही कटोरो है न बाटकी ।  
 कामरी फटी-सी हुती डौड़नकी भाला नाक,  
 गोमतीकी माटीकी न सुध कहूँ माटकी ।

( नरोत्तम )

यह सब तो नहीं सही, परन्तु ब्राह्मणी और बच्चे भी कहाँ  
 गये !

सुदामाजी यों सोच ही रहे थे कि देव-देवियोंके समान तेजयुक्त  
 सुदामापुरनिवासी नर-नारियोंने आनन्दसहित गाते-बजाते हुए  
 खागतके लिये वहाँ आकर आदरपूर्वक सुदामाजीसे कहा कि ‘आप

विचार क्या कर रहे हैं? चलिये, पधारिये, यह आपकी ही पुरी है।' पतिका शुभागमन सुनकर उनकी अगवानीके लिये सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सज्जिता लक्ष्मी-सरीखी शोभावाली सुदामाजीकी पतिव्रता खी भी बाहर निकली। पतिको देखकर प्रेमोत्कण्ठासे उसके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। सुदामाजी यह सब देखकर विस्मित हो गये और उन्होंने उस महासमृद्धि तथा ऐश्वर्ययुक्त महलमें पतीसहित प्रवेश किया। सुदामाजी सारा रहस्य समझकर मन-ही-मन कहने लो कि 'यह उन महाऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णकी ही लीला है। वे ही मेरे सखा, याचकको बिना बताये गुप्तरूपसे सब कुछ देकर उसका मनोरथ पूर्ण करते हैं। परन्तु मुझे धन नहीं चाहिये, मेरी तो वारम्बार यही प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरमें वही श्रीकृष्ण मेरे सुहृद्, सखा तथा मित्र हों और मैं उनका अनन्य भक्त रहूँ। मैं इस सम्पत्तिको नहीं चाहता, मुझको तो प्रत्येक जन्ममें उन सर्वगुणसम्पन्न महानुभावकी विशुद्ध भक्ति और उनके भक्तोंका लोकपावन संग ही प्राप्त हो। वे दया करके ही धन नहीं दिया करते हैं क्योंकि धनके गर्वसे धनवानोंका अधःपात हो जाता है इसीलिये वे अपने अदूरदर्शी भक्तको विविध सम्पत्ति और राज्य आदि ऐश्वर्य नहीं देते।'

पाठक! यह वचन अब दरिद्र सुदामाके नहीं हैं, परन्तु महाऐश्वर्यवान् होनेपर भी मनसे सर्वथा विरक्त एक अनुभवी

परम भक्तके हैं । धनी और निर्धन—दोनोंको इन शब्दोंपर व्याज देना चाहिये । धनियोंको केवल धनमें ही सुख न मानकर परम धन, और निर्धनोंको धन-प्राप्तिमें सुख होनेकी झट्ठी आशाको त्यागकर सबके परम धन परमात्मा श्रीकृष्णके ग्रेममें अपनेको लगाना चाहिये ।

भक्तराज सुदामाने अनासत्तमावसे संसारमें रहते हुए ईश्वर-भजनमें मन लगाकर धोरे-धोरे विषयोंका त्याग करके अन्तमें भगवान्‌के व्यानसे अपने अहंभावको सर्वथा मिटा दिया और वे शीघ्र ही ब्रह्मज्ञानियोंकी गति उस विशुद्ध ब्रह्मपदको प्राप्त हो गये ।

यदि आपको भी कोई मित्र चाहिये तो जगत्के स्वार्थमय मित्रोंको छोड़कर उस परम सुहृद् कृष्णको ही अपना मित्र बनाइये । देखिये, वह देखिये ! वह हाथ बढ़ाये आपसे गाढ़ी मित्रता करनेके लिये आपके सामने उपस्थित हैं । अवसर न चूंकिये ।

वोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय ।







भगवान्‌की गोदमें भक्त चक्रिक भील

## चक्रिक भील

A decorative horizontal flourish consisting of a central heart-like shape flanked by symmetrical scrollwork.

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः प्रद्राश्वान्येऽन्त्यजास्तथा।

हरिभक्तिं प्रपन्ना ये ते कृतार्था न संशयः ॥

हरेरभक्तो विप्रोऽपि विज्ञेयः श्वपचाधिकः ।

हरिभक्तः श्वपाकोऽपि विज्ञेयो ब्राह्मणाधिकः ॥

( पञ्चांश्लियाभोगां अ० २६ )

अर्थात् 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और जो अन्य अन्त्यज लोग हैं वे भी हरिभक्तिद्वारा भगवान्‌की शरण होनेसे कृतार्थ हो

जाते हैं इसमें संशय नहीं है। यदि ब्राह्मण भी भगवान्‌के विमुख हो तो उसे भी चाण्डालसे अधिक समझना चाहिये और यदि चाण्डाल भी भगवान्‌का भक्त हो तो उसे भी ब्राह्मणसे अधिक समझना चाहिये।

द्वापरयुगमें चक्रिक नामक एक भील वनमें रहता था। भील होनेपर भी उसके आचरण बहुत ही उत्तम थे। वह मीठा बोलनेवाला, क्रोध जीतनेवाला, अहिंसापरायण, दयालु, दम्भहीन और माता-पिताकी सेवा करनेवाला था। यद्यपि उसने कभी शास्त्रोंका श्रवण नहीं किया था तथापि उसके हृदयमें भगवान्‌की भक्तिका आविर्भाव हो गया था। वह सदा हरि, केशव, वासुदेव, और जनार्दन आदि नामोंका स्मरण किया करता था। वनमें एक भगवान्‌ हरिकी मूर्ति थी। वह भील वनमें जब कोई सुन्दर फल देखता तो पहले उसे मुँहमें लेकर चखता, फल मीठा न होता तो उसे स्वयं खा लेता और यदि बहुत मधुर और स्वादिष्ठ होता तो उसे मुँहसे निकालकर भक्तिपूर्वक भगवान्‌के अर्पण करता। वह प्रतिदिन इस तरह पहले चखकर खादिष्ठ फलका भगवान्‌के श्रद्धासे भोग लगाया करता। उसको यह पता नहीं था कि जूँठा फल भगवान्‌के भोग नहीं लगाना चाहिये। अपनी जातिके संस्कारके अनुसार ही वह सरलतासे ऐसा आचरण किया करता।

एक दिन वनमें घूमते हुए भीलकुमार चक्रिकने एक पियाल

बृक्षके एक पका हुआ फल देखा । उसने फल तोड़कर खाद जाननेके लिये उसको जीभपर रखें, फल बहुत ही स्वादिष्ठ था परन्तु जीभपर रखते ही वह गलेमें उत्तर गया । चक्रिकको बड़ा विषाद हुआ, भगवान्‌के भोग लगानेलायक अत्यन्त स्वादिष्ठ फल खानेका वह अपना अधिकार नहीं समझता था । ‘सबसे अच्छी चीज ही भगवान्‌को अर्पण करनी चाहिये’ उसकी सरल बुद्धिमें यही सत्य समाया हुआ था । उसने दाहिने हाथसे अपना गला दबा लिया कि जिससे फल पेटमें न चला जाय । वह चिन्ता करने लगा कि ‘अहो ! आज मैं भगवान्‌को मीठा फल न खिला सका, मेरे समान पापी और कौन होगा ?’ मुँहमें अँगुली डालकर उसने बमन किया तब भी गलेमें अटका हुआ फल नहीं निकला । चक्रिक श्रीहरिका एकान्त सरल भक्त था, उसने भगवान्‌की मूर्तिके समीप आकर कुल्हाड़ीसे अपना गला एक तरफसे काटकर फल निकाला और भगवान्‌के अर्पण किया । गलेसे खून वह रहा था । पीड़ाके मारे व्याकुल हो चक्रिक बेहोश होकर गिर पड़ा । कुपासय भगवान् उस सरलहृदय शुद्धान्तःकरण प्रेमी भक्तकी महती भक्ति देखकर प्रसन्न हो गये और चतुर्भुजरूपसे साक्षात् प्रकट होकर कहने लगे—

‘इस चक्रिकके समान मेरा भक्त कोई नहीं, क्योंकि इसने अपना कण्ठ काटकर मुझे फल प्रदान किया है—

यद्यत्वानृण्यमाप्नोति तथा वस्तु किमस्ति मे ।

—मेरे पास ऐसी क्या वत्तु है जिसे देकर मैं इससे उक्षण हो सकूँ ? इस भील-पुत्रको धन्य है, मैं ब्रह्मल, शिवल या विष्णुल देकर भी इससे उक्षण नहीं हो सकता ।'

इतना कहकर भगवान् ने उसके मर्त्तकपर हाथ रखा । कोमल करकमलका त्पर्श होते ही उसकी सारी व्यया दूर हो गयी और वह उसी क्षण उठ वैठा ! भगवान् उसे उठाकर अपने पीताम्बरसे, जैसे पिता अपने प्यारे पुत्रके अङ्गकी घूल झाड़ता है, उसके अङ्गकी घूल झाड़ने लो । चक्रिकने भगवान् को साक्षात् अपने सम्मुख देखकर हर्षसे गङ्गद कण्ठ हो मधुर वाक्योंसे उनकी इस प्रकार ल्हुति की—

‘हे गोविन्द, हे केशव, हे हरि, हे जगदीश, हे विष्णु ! यद्यपि मैं आपकी प्रार्थना करनेयोग्य वचन नहीं जानता तथापि मेरी रसना आपको ल्हुति करना चाहती है । हे खामी ! कृपाकर मेरे इस महान् दोषका नाश करजिये । हे चराचरपति, चक्रधारी ! जिस पूजासे प्रसन्न होकर आपने मुझपर कृपा की है, आपकी उस पूजाको छोड़कर संसारमें जो लोग दूसरेकी पूजा करते हैं वे महामूर्ख हैं ।’

भगवान् उसकी ल्हुतिसे बड़े सन्तुष्ट हुए और उसे वर माँगनेको कहा । सरल भक्त बोला—

‘हे परब्रह्म ! हे परमवाम !! हे कृपामय परमात्मन् !!! जब

मैंने साक्षात् आपके दर्शन प्राप्त कर लिये हैं तो मुझे और वरकी क्या आवश्यकता है ? परन्तु हे लक्ष्मीनारायण ! आप वर देना ही चाहते हैं तो कृपाकर यही वर दीजिये कि मेरा चित्त आपमें ही अचलरूपसे लगा रहे ।'

भक्तोंको इस वरके सिवा और कौन-सा वर चाहिये ? भगवान् परम प्रसन्न हो अपनी चारों विशाल भुजाओंसे चक्रिकका आलिङ्गन करके, भक्तिका वर दे, वहाँसे अन्तर्धान हो गये ।

तदनन्तर चक्रिक द्वारका चला गया और वहाँ भगवत्कृपासे ज्ञान लाभकर अन्तमें देवदुर्लभ मोक्ष-पदको प्राप्त हो गया । जो कोई भी भगवान्‌की सरल, शुद्ध भक्ति करता है वही उन्हें पाता है—

ये यजन्ति दूढया खलु भक्त्या  
वासुदेवचरणाम्बुजयुगमम् ।  
वासचादिविषुधप्रवरेष्यं  
ते ब्रजन्ति मनुजाः किल मुक्तिम् ॥

( पश्चापुराण )

जो मनुष्य दृढ़ भक्तिके द्वारा इन्द्रादि देवपूजित वासुदेव-भगवान्‌के चरणकमलयुगलकी पूजा करता है वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !



तुम्हेक एवा गदाधिन  
मन्महयमदास कोलाह गीतामेल, रोरलकुर ।

श्रीहरि:

# गीताप्रेस, गोरखपुर

की

पुस्तकोंकी संक्षिप्त

सूची

माघ १९९१

(१) पुस्तकोंका विशेष विस्तार तथा पूरा नियम जाननेके  
लिये बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मैंगाइये।

(२) हमारे यहाँ अनेक प्रकारके धार्मिक छोटे, बड़े, रंगीन  
और सादे चित्र-प्रिलिटे हैं। विशेष जानकारीके  
लिये चित्र-सूची मुफ्त मैंगाइये।

## कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

(१) हर एक पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला वहुत साफ देवनागरी अक्षरोंमें लिखें। नहीं तो जवाब देने या माल भेजनेमें चहुन दिक्षित नहीं। नाथ ही उत्तरके लिये उदाहरी काढ़ या टिकट आना चाहिये।

(२) अगर ज्यादा किताबें मालगाड़ी या पासलसे मँगानी हों तो रेलवेस्टेशनका नाम जम्हर लिखना चाहिये। आड़रके साथ कुछ दाम पेशगी भेजने चाहिये।

(३) थोड़ी पुस्तकोंपर डाकघरचं अधिक पढ़ जानेके भयसे एक रूपयेसे कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती, इससे कमकी किताबोंकी कीमत, डाकमहसूल और रजिस्ट्री-खर्च जोड़कर टिकट भेजें।

(४) एक रूपयेसे कमकी पुस्तकें बुकपास्टसे मँगवानेवाले सज्जन। तथा रजिस्ट्रीसे मँगवानेवाले। (=) (पुस्तकोंके मूल्यसे) अधिक भेजें। बुकपास्टका पैकेट प्रायः गुम हो जाया करता है; अतः इस प्रकार खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम लिम्पेवार नहीं हैं।

### कमीशन-नियम

१) से कमकी पुस्तकोंपर कमीशन नहीं दिया जाता। २) से १०) तक १२॥) सैकड़ा, फिर २५) तक १८॥) सैकड़ा, इससे ऊपर २५) सैकड़ा दिया जाता है।

३०) की पुस्तकें होनेसे ग्राहकको रेलवेस्टेशनपर मालगाड़ीसे की डिलेवरी दी जायगी, परन्तु सभी प्रकारकी पुस्तकें लेनी होंगी, केवल गीता नहीं। दीपावलीसे दीपावलीतक ३०००) नेटकी पुस्तकें सीधे आड़र भेजकर लेनेवालोंको ३) सैकड़ा कमीशन और दिया जायगा। जल्दीके कारण रेलपासलसे मँगवानेपर आधा भाड़ा दिया जायगा। इससे अधिक कमीशनके लिये लिखा-पढ़ी न करें।



## गीताप्रेसकी पुस्तके

**श्रीमद्भगवद्गीता**-[ शीकांडभाष्यका सरल हिन्दी-अनुवाद ] दूसरा  
संस्करण आषाढ़यक परिवर्तनके साथ दृष्टा हैं, इसमें मूल भाष्य हैं  
और भाष्यके सामने ही शर्ध लिखकर पढ़ने और समझनेमें  
लुगमता कर दी गयी है। श्रुति, सृष्टि, इतिहासोंके उद्धृत  
प्रभाणोंका सरल पार्थ चिथा गया है। पृष्ठ ५५९, ३ चित्र, मू०  
साधारण जिल्ड २॥), यहाँ जिल्ड ... २॥)

**श्रीमद्भगवद्गीता**-मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका,  
टिप्पणी, प्रधान क्षेत्र सूष्मन विषय एवं त्यागसे भगवद्यासि-  
सदित, मोटा टाइप, कपणका जिल्ड, पृष्ठ २७०, बहुरंगे ४ चित्र १॥)  
**श्रीमद्भगवद्गीता**-गुजराती टीका, गीता नम्बर दोकी तरह, मू० ... १॥)  
**श्रीमद्भगवद्गीता**-भराठी टीका, हिन्दीकी १॥) वालीके समान, मूल्य १॥)  
**श्रीमद्भगवद्गीता**-प्रायः सभी विषय १॥) वालीके समान, विशेषता  
यह है कि लोकोंके स्तरेपर भावार्थ दृष्टा हुआ है, साइज  
और टाइप फुटु छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य १॥), सजिल्ड ... १॥=)  
**श्रीमद्भगवद्गीता**-गंगला टीका, गीता नं० ५ की तरह । मू० १), स० ... १॥)  
**श्रीमद्भगवद्गीता**-शुष्ठीक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय  
और त्यागसे भगवत्-प्रासि नामक निवन्धनसहित। साइज मझोला,  
मोटा टाइप, ३.१६ पृष्ठकी सचित्र पुस्तकका मूल्य १॥), स० ... १॥=)

**गीता**-मूल, मोटे अचरबाली, सचित्र, मूल्य १-), सजिल्ड ... १॥)

**गीता**-साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सभी विषय ॥) वालीके  
समान, सचित्र, पृष्ठ ३५२, मूल्य १॥), सजिल्ड ... १॥=)

**गीता**-भाषा, इसमें शुष्ठीक नहीं हैं। अचर मोटे हैं, १ चित्र, मू० १), स० १॥)

**गीता**-मूल तावीजी, साइज २ X २॥) इच्छ, सजिल्ड, मू० ... १॥=)

**गीता**-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्ड, मू० ... १॥=)

**गीता**-७॥ X १० इच्छ साइजके दो पज्जोंमें सम्पूर्ण, मू० ... १॥)

**गीता-ठायरी**-सन् १९३५ की, मू० १) सजिल्ड ... १॥=)

**गीता-सूची** ( Gita-List ) श्रुतिसान २००० गीताओंका परिचय मू० १॥)

**पता**-गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीश्रीविष्णुयुराण—हिन्दी-अनुवादसहित, आठ सुन्दर चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ हैं, साहज २३५२९ ८ पेजी, पृष्ठ ५४८, मू० साधारण जिल्ड २॥), कपड़ेकी जिल्ड २॥)

अध्यात्मरामायण—सटीक, आठ चित्रोंसे सुशोभित, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ हैं, दूसरा संस्करण छप गया है।

मू० १॥), सजिल्ड २)

ग्रेस-योग—सचित्र, लेखक—श्रीविद्योगी हरिवी, पृष्ठ ४२०, बहुत मोटा पुण्टिक कागज, मूल्य अजिल्ड १), सजिल्ड ... १॥)

श्रीतुकाराभ-चरित्र-दक्षिणके एक प्रसिद्ध सन्तका पावन चरित्र है, ९ सादे चित्र, पृष्ठ ६९४, सुन्दर छपाई, ग्लैज कागज, मू० १॥) स० १॥)

श्रीद्वृण-विज्ञान अर्थात् श्रीभद्रगवद्वीताका भूलसहित हिन्दी-पदा-नुवाद गीताके श्लोकोंके ठीक सामने ही कवितामें हिन्दी अनुवाद छपा है। दो चित्र, पृष्ठ २७५, मोटा कागज, मू० १॥), स० १)

बिनय-पत्रिका—सरल हिन्दी-भावार्थ-सहित, ६ चित्र, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, २८ संस्करण, भावार्थमें अनेकों जावश्यक संशोधन किये गये हैं तथा परिशिष्टमें कथाभागके ३७ पृष्ठ और जोड़ देनेपर भी मूल्य पहलेवाला ही अर्थात् १), सजिल्ड १।) रक्खा गया है।

गीतावली—अर्थसहित, ८ चित्र, अनु०—श्रीसुनिलालजी अभी-अभी नयी प्रकाशित हुई है। इसमें रामायणका तरह सात काण्डोंमें श्रीरामचन्द्र-जीकी लीलाओंका भजनोंमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। मू० १) स० १॥)

भागवतरङ्ग प्रह्लाद—३ रङ्गीन, ५ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ ३४०, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य १) सजिल्ड ... १॥)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)—सचित्र, श्रीचैतन्यदेवकी बड़ी जीवनी। पृष्ठ ३६०, मू० १॥=), सजिल्ड १॥)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २)—सचित्र, पहले खण्डके आगेकी लीलाएँ। पृष्ठ ४५०, ९ चित्र, मूल्य १॥=), सजिल्ड १॥=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ३) हाल ही छपा है, पृष्ठ ३८४, ११ चित्र, मूल्य १), सजिल्ड १॥)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीमद्भागवतान्तर्गत पुकादश स्कन्ध-सचिन्न, सटीक, पृष्ठ ४२०,  
 मूल्य केवल ॥), सजिल्द ... १)   
 देवर्पि नारद-२ रङ्गीन, ३ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ २४०, सुन्दर  
 छपार्ड, मूल्य ॥), सजिल्द ... १)   
 तर्क-चिन्तामणि भाग १-सचिन्न, लेखक-श्रीजयदयालजी शोयन्दका,  
 यह ग्रन्थ परम उपयोगी है। इसके मननसे धर्ममें श्रद्धा,  
 भगवान्‌में प्रेम और विश्वास एवं नित्यके बर्तावमें सत्य  
 व्यवहार और सबसे प्रेम, अत्यन्त आनन्द पुर्वं शान्तिकी  
 प्राप्ति होती है। पृष्ठ ३५०, मूल्य ॥=), सजिल्द ... १)   
 तर्क-चिन्तामणि भाग २-सचिन्न, इसमें लोक और परलोकके सुख-साधनकी  
 राह बतानेवाले सुविचारपूर्ण सुन्दर-सुन्दर लेखोंका अति उत्तम  
 संग्रह है। ६०० से ऊपर पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य प्रचारार्थ केवल  
 ॥=) स० १=) रक्खा गया है। एक पुस्तक अवश्य मँगवावें।   
 नैवेद्य-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्धारके २८ लेख और ६ कविताओंका  
 सचिन्न तथा सुन्दर अन्य, पृ० ३५०, मू० ॥=), स० ... १)   
 श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र-दक्षिणके अत्यन्त प्रसिद्ध, सबसे अधिक प्रभाव-  
 शाली भक्त, 'श्रीज्ञानेश्वरी गीता' के कर्ताकी जीवनदायिनी  
 जीवनी और उनके उपदेशोंका नमूना। एक बार अवश्य  
 पढ़ें। सचिन्न, पृष्ठ ३५६, मू० ... १)   
 विष्णुसहस्रनाम-शांकरभाष्य हिन्दी-टीका-सहित, सचिन्न; भाष्यके सामने  
 ही उसका अर्थ छापा गया है। नित्य-पाठके स्तोत्रोंमें सबसे अधिक  
 प्रचार विष्णुसहस्रनामका ही है। भगवान्‌के नामोंके रहस्य  
 जाननेके लिये यह अर्थ अद्वितीय है, मूल्य ॥=) बहुत सुलभ रक्खा  
 गया है। अर्थ जानकर पाठ करनेसे यह अति आनन्ददायक है।   
 श्रुति-रक्खली-लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, खास-खास  
 श्रुतियोंका अर्थसहित संग्रह; एक पेजमें भूल श्रुतियाँ और  
 उसके सामनेके पेजमें उनके अर्थ रखे गये हैं, मू० ॥)   
 तुलसीदल-लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्धार, इसमें छोटे-बड़े,  
 लो-पुरुष, आस्तिक-नास्तिक, चिद्वान्-मूर्ख, भक्त-ज्ञानी, गृहस्थी-  
 पता—गीताग्रेस, गोरखपुर

रथार्ती, नला और लाहिल-प्रेसी नवके लिये कुछ-न-कुछ  
उन्नतिका भगवां मिल भवता है। पृष्ठ २८२, सचिव, मू० ॥), स० ॥५)

शांखुदनाथ-चरित-से १—द्विभन्नप्रसादण पं० लक्ष्मण रामचन्द्र  
पांगारल, भापान्तरकार-पं० शांलक्ष्मण नारायण गर्वे। हिन्दी-  
में एकनाथ नहाराजकी जांबनी अभिनवक नटीं देवी, मू० ३० ॥)

द्रिवज्वरी—( सचिव ) उठनेमें नोनेतक करनेयोग्य धार्मिक वार्तोंका  
बणीन। निधि-पाठके बांध भजोन्न और भजनोंसहित। मू० ३० ॥)

द्विदेव-चूटानणि—( सानुवाद, सचिव ) पृष्ठ २२४, मू० १३), स० ॥६)  
श्रीरामकृष्ण परमहंस—( सचिव ) इस बन्धमें एनहोंके ज्ञान और  
ज्ञानभवे उपदेशोंका समाह है। प० २५२, मू० ३० ॥६)

भक्त-भारती—७चित्र, कवितामें ७ भक्तोंका सरल कथाएँ, मू० १३), स० ॥७)  
भक्त चालक-शोधित, सोहन आदि चालकभक्तोंका कथाएँ है ।—)

भक्त नारी—सियर्समें धार्मिक भाव बदानेके लिये बहुत उपयोगी कथाएँ है।—)

भक्तपञ्चरत-यह पाँच कथाओंकी पुन्तक सूहृदयोंके लिये द्रष्टे कामकी है।—)

आदर्श भक्त-राजा शिवि, रन्ति देव, अग्नरोप आदिको कथाएँ, ७चित्र, मू० १—)

भक्त-सप्तरत्न-सात भक्तोंका भनोहर गाथाएँ, ७ चित्र, पृष्ठ १०६, मू० १—)

भक्त-कुसुम-होट-बड़े, सो-पुरुष सवके पढ़ने योग्य प्रेमभास्त्रर्ण प्रत्य ।—)

प्रेमा भक्त-६ चित्रोंसे सुझोभित, मू० ३० ।—)

यूरोपकी भक्त शियाँ—३चित्रोंसे सुझोभित, मू० ३० ।—)

रातामें भक्ति-योग—( सचिव ) लेखक-श्रीवियोगी हरिजी, मू० १—)

परमार्थ-पत्रावलो—श्रीजयदयालजी गोपन्दकाके ५१ कहथाणकारी

पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ १४४, पुण्टिक कागज, मू० ३० ।—)

भाता—श्रीजरविन्दकी अंगरेजी पुन्तक ( Mother ) का अनुवाद, मू० ।—)

श्रुतिकी टेर—( सचिव ) लेखक-स्वामीजो श्रीभोलेशावाजी, मू० ।—)

ज्ञानयोग—सन्त श्रीभवानीशंकरजी महाराजके ज्ञानयोगसम्बन्धी

उपदेश, पृष्ठ १२८, मू० ३० ।—)

बजकी झाँकी—लगभग ५० सिंग, मू० ३० ।—)

श्रीददरी-केदारकी झाँकी—सचिव, मू० ३० ।—)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

**ग्रन्थ-सुधाकर-**( सानुवाद, सचिन्त्र ) इसमें विषयभोगोंकी तुच्छता

दिखाते हुए आत्मसिद्धिके उपाय बताये गये हैं, मूल्य =)॥

**मानव-धर्म-**ले०—श्रीहनुमानप्रसादजी पोदार, पृष्ठ ११२, मूल्य =)

**गीता-निबन्धावली-**गीताकी अनेक बातें समझनेके लिये उपयोगी

है। यह गीता-परीक्षाकी मध्यमाकी पढ़ाईमें रक्खी गयी है, मू० =)॥

**साधन-पथ-**ले०—श्रीहनुमानप्रसादजी पोदार, सचिन्त्र, पृष्ठ ७२, मू० =)॥

**वेदान्त-छन्दावली-**ले०—स्वामीजी श्रीभोलेशाजी, मू० =)॥

**अपरोक्षानुभूति-**मूल श्लोक और अर्थसहित, सचिन्त्र, मूल्य ... =)॥

**मनन-माला-**यह भावुक भक्तोंके बड़े कामकी चीज है, मू० ... =)॥

The Immanence of God—By Pandit Malaviyaji... As. 2  
चिन्त्रकूटकी छाँकी ( २२ चिन्त्र ) ले०—लाला श्रीसीतारामजी वी० ए० =)

**अजन-संग्रह** प्रथम भाग =) द्वितीय भाग =) तृतीय भाग =) चतुर्थ

भाग =) पञ्चम भाग ... ... =)

**खीर्धर्मप्रश्नोत्तरी-**(नये संस्करणमें १० पृष्ठ बड़े हैं) ... =)

सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय ... =)॥

गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग ... =)॥

मनुस्मृति द्वितीय अध्याय अर्थसहित ... =)॥

गोपी-प्रेस सचिन्त्र, ले०—श्रीहनुमानप्रसादजी पोदार, पृष्ठ ५०, मूल्य =)॥

**हनुमानवाहुक-**सचिन्त्र, सटीक =)। | मनको वश करनेके उपाय सचिन्त्र =)।

**आनन्दकी लहरें-**सचिन्त्र, मू० =)। | गीताका सूक्ष्म विषय =)।

ईश्वर-मूल्य =)	विष्णुसहस्रनाम	श्रीहरिसंकीर्तनधुन =)
----------------	----------------	-----------------------

मूल गोसाहुँ-चरित =)	मूल )  , स० =)	गीता द्वितीय
---------------------	----------------	--------------

सप्त-महाव्रत =)	रामगीता सटीक )  ।	अध्याय सटीक =)
-----------------	-------------------	----------------

समाज-सुधार =)	हरेरामभजन२माला )  ।	पातञ्जलयोगदर्शन
---------------	---------------------	-----------------

ब्रह्मचर्य =)	सन्ध्योपासन हिन्दी-	मूल =)
---------------	---------------------	--------

श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश =)	विधिसहित )	धर्म क्या है ? =)
-------------------------	------------	-------------------

भगवान् क्या है ? =)	बलिवैश्वदेवविधि )	दिव्य सन्देश =)
---------------------	-------------------	-----------------

आचार्यके सदुपदेश =)	ग्रन्थोत्तरी सटीक )	कल्याण-भावना =)
---------------------	---------------------	-----------------

एक सन्तका अनुभव =)	सेवाके मन्त्र )	लोभमें पाप आधा पैसा
--------------------	-----------------	---------------------

स्यागसे भगवद्यासि =)	सीतारामभजन )	गजलगीता आधा पैसा
----------------------	--------------	------------------

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

## कल्याण

भाजि, जान, वैराग्यसम्बन्धी सचिव धार्मिक मासिक पत्र,

(पादिक्ष नूल्प ४३)

### कुल दिव्योपांक

रामायण—पृष्ठ ५१२, नित्यवेद-इकठंगे १६७ चित्र, मू० २॥३), म० ३५)

भगवान्—तीक्ष्ण वर्षीय पूर्ण लालूलद्वित, मू० ४३), भागिकृ ३॥३)

ईश्वराद् तपसिद्धिएह—नातवें वर्षीय पूर्ण लालूलद्वित, मू० ४३)

ल लिलै (थो लिलै) ... ... ५१—)

श्रीरामाद् ग्रन्थसिद्धिएह—गृष्ठ ८६६, चित्र २८७, मू० ३), म० ३५)

“ — आटवें वर्षीय पूर्ण लालूलद्वित, मू० ४३), म० ५।—)

श्रीराम-बङ्ग क्षपसिद्धिएह—पृष्ठ ७००, चित्र २१०, मूल्य ३), म० ३५)

(इनमें रमायान नहीं है, दाक-भागमूल हमारा)

द्वयवत्स्यापक—कल्याण, गोरखपुर

### चित्र

छोटे, बड़े, रंगीन और सादे धार्मिक चित्र

श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीविष्णु और श्रीशिवके द्वयवत्स्यापक।

जिसको ट्रैक्टर द्वारे भगवान् याद थावें, वह अम्बु हमारे लिये संभवतुमि है। भाजीं और भगवान् के भ्वरूप एवं उनकी मधुर मोहिनी लीलाधोंके सुन्दर द्वय-चित्र हमारे सामने रहें तो उन्हें ट्रैक्टर थोड़ी देरके लिये हमारा मन भगवत्सारणमें उग जाता है।

ये सुन्दर चित्र किसी इंद्रजले इस उद्देश्यको पूर्ण कर सकते हैं। इनका संभवकर प्रेमसे जहाँ आपको हृषि नित्य पक्षती हो, वहाँ घरमें, दैठकमें और मन्दिरोंमें लगाइये एवं चित्रोंके बहाने भगवान् को यादकर अपने मन-प्राणको प्रफुल्लित कीजिये।

हमारे यहाँ १८५२३, १८५२०, १०५१५, ७॥५१० और ५५७॥ के बड़े और छोटे चित्र सस्ते-सस्ते दामोंमें निलते हैं।

दूकानदार और थोक-खरीदारोंको कमीशन भी दिया जाता है। चित्रोंकी सूची अलग सुप्तस माँगवाइये।

पता—गीताग्रेस, गोरखपुर

# आपको एक निवेदन

—०७०—

यदि आप कभी पठन-पाठन, श्रवण-मनन, पाठ-पूजा या मनोविनोद और ज्ञान-लाभ, भैट-उपहार या इनाम, दान-धर्म और संग्रहके लिये सुन्दर, सचित्र, शुद्ध, सत्ती धार्मिक पुस्तकें लेना चाहें तो गीताप्रेसको भी एक बार याद कीजिये, शायद वह आपकी कुछ सेवा कर सके।

सदा ऐसी पुस्तकें खरीदनी चाहिये जो घरके छोटे-बड़े, लड़ी-पुरुष, हृदय-युवा सब बिना संकोच पढ़ सकें और जो एक बार पढ़नेपर पुरानी न हो जाय। हमारा धार्मिक साहित्य कितना सुन्दर है जो युगोंसे आदर पा रहा है! इसी तरह उसके सहारेसे और अपने अनुभवसे लिखे आजकलके ग्रन्थ भी आदरित हो रहे हैं।

एक बार हमारी थोड़ी-सी पुस्तकें मँगवाकर देखें। फिर आपको रुचे तो और मँगवानेकी कृपा कर सकते हैं। अपनी ओरसे अधिक आश्रह नहीं कर सकते, पर हमारी बात सुननेयोग्य है।

हमारे सूचीपत्रमें देखिये कि कौन-सी पुस्तक कितनी लाख और कौन-सी पुस्तक कितनी हजार बिकी है, उसके कितने सत्तो दाम हैं और वह कितनी बार छप चुकी है। शायद इन बातोंसे आपको पता लग जायगा कि कौन-सी पुस्तक अच्छी है।

हमारे यहाँ बाढ़िया कागजपर, साफ-सुन्दर सचित्र, शुद्ध, सत्ती और उपयोगी पुस्तकें ही प्रायः छपा करती हैं। सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

व्यवस्थापक—

गीताप्रेस, गोरखपुर।

—०८०—